कहानी संग्रह

हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

कहानी संग्रह

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

प्रकाशक :—

प्रियबन्धु,

व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग,

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद (दक्षिण)

प्रथम संस्करण ५०००—१९५१

द्वितीय संस्करण १०००—१९५३

तृतीय संस्करण २०००—१९५३

मूल्य १-२-०

मुद्रक—

हिन्दी प्रेस

हिन्दी प्रचार सभा,

हिन्दी मार्ग, नामपल्ली, हैदराबाद (दक्षिण)

इस [illegible] म उन कहानियों को प्रस्तुत किया जा रहा है जो वयस्कों के साथ थोड़ी आयु के विद्यार्थियों का मनोरंजन [illegible] ।

कहानियों के चुनने में सभी प्रकार की रुचियों का ध्यान [illegible] है । मनोरंजन क साथ-साथ पाठक इन कहानियों से प्रेरणा भी प्राप्त कर सकेगा । यह भी ध्यान में रखा गया है कि इस संग्रह से पाठक हिन्दी के परिचित शब्दों साथ नये शब्दों का ज्ञान भी प्राप्त कर सके ।

जिन लेखकों ने अपनी कहानियों के प्रकाशन की अनुमति दी है, सभा उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है ।

प्रकाशक

सूची

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आयी थी; पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भण्डार-घर की चाबी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, रामू की बहू घर में सब कुछ; सासजी ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन बहू ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डार-घर खुला है तो कभी घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौक़ा मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफ़त में और कबरी बिल्ली के छक्के-पञ्जे। रामू की बहू हाँड़ी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढँक कर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर यह बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसी परच गई थी, कि रामू की बहू के लिए खाना पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब तक आये तब तक कटोरी साफ चटी हुई। बाज़ार से मलाई आई और जब तक रामू की

बहू ने पान लगाया, बालाई ग़ायब। रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उसमें दूध, बालाई, चूहे और बिल्ली को स्वादिष्ट लगनेवाले विविध प्रकार के व्यञ्जन रखे गए, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहू उसे हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाये गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भर कर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े हो कर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाज़ी, इधर रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगा कर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी। पञ्जा कटोरे में लगा और कटोरा झन-झनाहट की आवाज़ के साथ फर्श पर।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुँची। सास के सामने पान फेंक कर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डट कर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आयी। किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गयी। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रख कर चली गई। हाथ में पाटा ले कर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगा कर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लायी, बस एकदम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़ कर, मिसरानी रसोई छोड़ कर और सास पूजा छोड़ कर, घटना-स्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सिर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुनती रही।

महरी बोली—"अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माँजी,

बिल्ली की हत्या बहू से हो गयी; यह तो बुरा हुआ।"

मिसरानी बोली—"माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनायेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।"

सासजी बोलीं—"हाँ, ठीक तो कहती हो अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू! यह क्या कर डाला?"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी का बुलाय लाई?"

सास की जान-में-जान आयी—"अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पण्डितजी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े। पण्डिताइन से मुस्कराते हुए बोले—"भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली है। प्रायश्चित्त होगा, पकान्नों पर हाथ फिरेगा।"

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से, मोटे-से आदमी थे। लम्बाई चार फीट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-

मठोल, मूँछें बड़ी-बड़ी, रङ्ग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराकवाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पञ्चायत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख। बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा—"पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है ?"

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—"बिल्ली की हत्या" कहने मात्र से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत मालूम हो, जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह।"—मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलायीं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा, चेहरे पर धुँधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया—"हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त में बिल्ली की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है। रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ।"

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गये—"तो फिर

पण्डितजी, अब क्या होगा, आप ही बतलायें।"

पण्डित परमसुख मुस्कराये– "रामू की माँ, चिन्ता की कौन सी बात है, पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं? शास्त्र में प्रायश्चित्त का विधान है सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

रामू की माँ ने कहा—"पण्डितजी, इसीलिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय?"

"किया क्या जाय? यही एक सोने की बिल्ली बनवा कर बहू से दान करवा दी जाय। जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।"

छन्नू की दादी—"हाँ और क्या, पण्डितजी कहते तो ठीक हैं, बिल्ली अभी दान दी जाय और पाठ फिर हो जाय।"

रामू की माँ ने कहा—"तो पण्डितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवायी जाय?"

पण्डित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवायी जाय? अरे रामू की माँ, शास्त्रों में लिखा है कि बिल्ली के वज़न-भर सोने की बिल्ली बनवायी जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की माँ, बिल्ली के तौल-भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम की क्या होगी? कम-से-कम

इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी अपनी श्रद्धा !"

रामू की माँ ने आँखें फाड़ कर पण्डित परमसुख को देखा—"अरे बाप रे ! इक्कीस तोला सोना ! पण्डितजी, यह तो बहुत है, तोला-भर की बिल्ली से काम न निकलेगा ?"

पण्डित परमसुख हँस पड़े—"रामू की माँ, एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है--इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आयी। पण्डित परमसुख ने कहा—"उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं ? रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा का सामान कितना लगेगा ?"

"अरे, कम-से-कम सामान में हम पूजा कर देंगे. दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन-भर नमक भी लगेगा। बस, इतने से काम चल जायगा।"

"अरे बाप रे ! इतना सामान पण्डितजी, इसमें तो सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जायगा।" रामू की माँ ने रुआँसी हो कर कहा।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ ! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो। यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है ? और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं, अरे, डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।"

पण्डित परमसुख की बात से पञ्च प्रभावित हुए। किसनू की माँ ने कहा—"पण्डितजी ठीक कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।"

छन्नू की दादी ने कहा—"अरे नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान-पुन्न में किफ़ायत ठीक नहीं !"

मिसरानी ने कहा—"और फिर माँजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे, इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा ?"

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पञ्च पण्डितजी के साथ। पण्डित परमसुख मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा—"रामू की माँ, एक तरफ़ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ़ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्चा है। सो उससे मुँह न मोड़ो।"

एक ठण्डी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा—"अब तो आप जो नाच नचाएँगे, नाचना ही पड़ेगा।"

पण्डित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़ कर बोले—"रामू की

माँ ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो "मैं चला—" इतना कह कर पण्डितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पण्डितजी, रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता। बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न।" मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पण्डितजी के पैर पकड़े—और पण्डितजी ने अब जम कर आसन जमाया।

"और क्या हो ?" रामू की माँ ने पूछा।

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों वक्त पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।" कुछ रुक कर पण्डित परमसुख ने कहा—"सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेला दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले के भोजन करने से पाँच ब्राह्मणों के भोजन का फल मिल जायगा।"

"यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो ?" मिसरानी ने मुस्कराते हुए पण्डितजी पर व्यङ्ग किया।

"अच्छा, तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ। रामू की माँ ग्यारह तोला सोना निकालो. मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ दो घण्टे में मैं बनवा कर लौटूँगा। तब तक पूजा का प्रबन्ध कर रखो...और देखो, पूजा के लिए..."

पण्डितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आयी और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबड़ा कर कहा..."अरी क्या हुआ री ?"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—"माँजी, बिल्ली तो उठ कर भाग गयी !"

—भगवतीप्रसाद वाजपेयी

किरनें

पानी साँझ से ही बरसना शुरू हो गया था और सारी रात और दूसरे सारे दिन भी बरसता ही रहा, बरसता ही रहा। वर्षा का मटमैला, गेहुँआ रंग का पानी हमारी झोंपड़ियों के पास से हो कर बहता चला जा रहा था। सामनेवाले एक मकान के मिट्टी के चबूतरे से पानी का वह प्रवाह टक्कर खाता और एक बड़ा-सा भँवर बना कर आगे बढ़ जाता था। आगे बढ़ने और टकराने में पानी के उस पूर ने मिट्टी के उस चबूतरे को भी काट दिया था।

"दस और दो, बारह बरस होने आए, ऐसा पानी बरसा नहीं!" पड़ोस के दो एक बूढ़ों ने अपनी भवें चढ़ा कर एक दूसरे को अपने गहन अनुभव की बातें बतलाईं। खूँटों से बँधी-बँधी गायें थक कर रँभाने लगी थीं। उनकी धीमी और दुःख-पूर्ण ध्वनि पानी के स्वर में उठ कर आ रही थी। छप्परों के कवेलुओं को फोड़ता हुआ दो-चार घरों की छतों में से राख के रंग का धुआँ, जो पानी की बौछार में धुला-धुला और निखरा हुआ लगता था, बल खा-खा कर ऊँचा उठ रहा था।

उस धुएँ को देख कर मैंने सोचा, कितने भाग्यवान् हैं वे लोग! निश्चय ही वह धुआँ उनके चूल्हों से निकल रहा था। और सारा परिवार अपने थाली-कटोरे में खाना खा रहा होगा।

परन्तु मेरे घर में दो दिन से चूल्हा नहीं जला था। बूढ़ी माँ एक पुरानी खटिया पर बीमार पड़ी अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थी। मेरा उसके पास रहना अत्यन्त आवश्यक था। क्योंकि वह अब-तब की मेहमान थी। गांव के वैद्य ने पहले मेहनताना पाने की आशा में, फिर उधार वसूल करने की आशा में और अन्त में गाँव के गरीब मुहताज़ों को सहायता दे कर स्वर्ग जाने की अनन्त और पवित्र आशा में माँ को कुछ दिनों दवाई की पुड़ियाँ दी थीं। लेकिन अब उसने भी हाथ खींच लिया था। मेरे बार-बार जाने और गिड़-गिड़ाने पर भी उसने यही कहा कि बुढ़िया के अन्तिम दिन आ लगे हैं। मैं तो क्या अब धन्वन्तरि का बाप भी उसे नहीं बचा सकता और शायद उसी का कहना ठीक था। अब माँ बीमारी और भूख से तड़प रही थी। घर में दो दिन से चूल्हा नहीं जला था। पहले बोहरा उधार देता रहा। फिर उसने भी उधार देना बन्द कर दिया था और पिछला बक़ाया वसूल करने की सख्ती शुरू कर दी। परसों ही वह आ कर कह गया था कि बीमारी-सुमारी के ढोंग वह बहुत देख चुका है। यदि दो दिन में पूरे पैसे जमा नहीं किए गए तो वह कुर्की लाएगा और हाँडे-कूँडे तक नीलाम करा ले जाएगा। अपनी बात को बल देने के लिए उसने जाते जाते यह भी कहा था कि तमाशा नहीं है, महाप्रतापी अंग्रेज़ सरकार की हुकूमत अब भी है और कोई किसी का देना मार नहीं सकता है।

मैं डर गया था क्योंकि बोहरे की महाप्रतापी अंग्रेज़ सरकार की हुकूमत में अभी तक ग़रीब आदमी बोहरों का देना मार नहीं सके थे। सरकार सचमुच ही बोहरों के पक्ष में थी और उस बोहरे ने अपनी माई-बाप सरकार की मदद से कई-कई घरों के हाँडे-कूँडे नीलाम करवा लिये थे। मुझे भी यही डर था। पानी हो या आँधी, सरकार बोहरे के साथ न्याय करने में कभी देर न करती थी और न्याय तो सदा बोहरे के पक्ष में होता आया था।

माँ ने कराहना शुरू कर दिया था। कराहने से उसे कुछ शान्ति मिल जाती थी। थोड़ी देर बाद उसने मुझे हाथ के संकेत द्वारा अपने पास बुलाया। मैंने अपना कान उसके निकट ले जा कर लगा दिया। पता नहीं माँ ने क्या कहा? पानी तो मैं उसे पिला ही रहा था। पर शायद, शायद वह कुछ खाना चाहती थी। लेकिन पानी तो पिछली साँझ से ही बरस रहा था और मैं दो बार भीगता हुआ सारी बस्ती से निष्फल लौट आया था।

माँ अब काँपने लगी थी। मैंने उसे अपनी गुदड़ी ओढ़ा दी थी। वह फिर भी काँपती रही। जब उसके दाँत कट–कटाने लगे और एक डरावनी आवाज़ आने लगी, तो मैंने अपना फटा कोट उस पर डाल दिया। वह फिर भी काँपती ही रही। मैंने उसे अपनी धोती ओढ़ा दी, लेकिन उसकी कँप-कँपी फिर भी बन्द न हुई।

रात बढ़ती जाती थी और अंधेरे के साथ-साथ मेरा डर भी बढ़ता जाता था। उजाला मनुष्य को बल देता है। दुःख और वेदना की मार यदि उजाले में, दिन के प्रकाश में आदमी पर पड़ती है तो वह उसे आसानी से सह लेता है। दिन का प्रकाश एक साथी की तरह है। वह सहायक होता है और हिम्मत बँधाता है लेकिन रात का अन्धेरा! ओह, दुःखी आदमी उसमें अपने को निस्सहाय पाता है। और खास कर जब मौत की काली-घटा सर पर मँडरा रही हो और आसमान ने पूरे ही दिन से अपनी आँख भी न खोली हो।

मेरा डर बढ़ता ही जाता था। घर की एक दीवार बह गई थी। दूसरी बहने की तैयारी में थी। छत में से पानी चू रहा था। यदि दूसरी दीवार भी बह गई तो......मारे डर के मेरे रोंगटे खड़े हो जाते थे।

पानी के साथ हवा भी चलने लगी थी। अंधड़ पूरे ज़ोर-शोर के साथ गरज-गरज कर पागल साँड की तरह डकराता-फुफकारता हुआ झोंपड़ी की दीवारों से टक्करें ले रहा था। अब भूख से मेरी अँतड़ियाँ भी कुलबुलाने लगी थीं। मैं भी सर्दी से काँप रहा था। इसलिए टूटी हुई उस ऊँची गीली मिट्टी के ढेर पर मैं ठीक एक कुत्ते की तरह सिकुड़ कर पड़ गया।

× × × ×

जैसे झटका लगा हो और मैं जाग गया। झोंपड़ी के वातावरण में एक अजीब-सी घुटन थी। मेरी छाती ज़ोरों से धड़क

रही थी। मानो एक सुकुमार पक्षी किसी कठोर पंजे में पड़ कर अपने पर फड़फड़ा कर सदा के लिए शान्त हो गया है।

मैं लपक कर माँ की खटिया के पास पहुँचा। घर में पानी ही पानी हो रहा था। छत से अब भी बूँदें टपक रहीं थीं। हवा उसी तरह सनसनाती हुई बह रही थी। मैं नङ्ग-धड़ंग था और मेरे सारे बदन में कीच लिपटी हुई थी और माँ खाट पर निस्पन्द पड़ी थी। उसका बदन ठण्डा हो गया था।

...पर बाहर पानी थम गया था और सामनेवाले नीम की ऊँची फुनगी पर सूरज की चमकीली किरनें हँसने लगी थीं।

—श्यामू सन्यासी

मधुआ

"आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं! आज सातवाँ दिन है सरकार!"

"तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है।"

"वह...वह तो कई दिन हुए। सात दिन ऊपर कई दिन हुए—अंधेरे में बोतल उँडेलने लगा था। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न अटा। और आप को कहने से क्या—क्या कहूँ...रुच मानिये, सात दिन से एक बूँद भी नहीं।"

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे। लखनऊ में लड़का पढ़ता था। ठाकुर साहब भी कभी-कभी वहीं आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। यह रात को, दो-पहर में, कभी-कभी सवेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुना कर ठाकुर का मनोविनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा—"तो आज पीओगे न?"

"झूठ कैसे कहूँ? आज तो जितना मिलेगा, सब की पीऊँगा। सात दिन चने-चबेने पर बिताये हैं, किसलिये?"

"अद्‌भुत! सात दिन पेट काट कर, आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है! यह भी... !"

"सरकार! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःखपूर्ण

जीवन से अच्छी है। उसकी ख़ुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं।"

"अच्छा, आज दिन-भर तुमने क्या-क्या किया है?"

"मैंने? अच्छा, सुनिये—सवेरे कुहरा पड़ता था। मेरे धुआँ-से कम्बल-सा, वह भी सूर्य के चारों ओर लिपटा था। हम दोनों मुँह छिपाए पड़े थे।"

ठाकुर साहब ने हँस कर कहा—"अच्छा तो इस मुँह को छिपाने का कोई कारण?"

"सात दिन से एक बूँद भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था? और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ-मुँह धोने में जो दुःख हुआ सरकार, वह क्या कहने की बात है? पास में पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कटकटी लग रही थी। पराठेवाले के यहाँ पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा। फिर गोमती किनारे चला गया! घूमते-घूमते अँधेरा हो गया, बूँदें पड़ने लगीं। तब कहीं भागा और आपके पास आया।"

"अच्छा, जो उस दिन तुमने गड़रियेवाली कहानी सुनाई थी, जिसमें आसफुद्दौला ने उस लड़की का आँचल, भुने हुए भुट्टे के दानों के बदले, मोतियों से भर दिया था, वह क्या सच है?"

"सच है! अरे वह ग़रीब लड़की भूख से उसे चबा कर

थू-थू करने लगी—रोने लगी। ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं। सुना है, श्रीरामचन्द्रजी ने भी हनुमानजी से ऐसी ही...!"

ठाकुर साहब ठठा कर हँसने लगे। पेट पकड़ कर हँसते-हँसते लेट गये। साँस बटोरते हुए सम्हल कर बोले—"और बड़प्पन कहते किसे हैं? कङ्गाल तो कङ्गाल, गधी लड़की, भला उसने कभी मोती देखे थे? चबाने लगी होगी। मैं सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनायीं, सब में बड़ी टीस थी। शाहज़ादों के दुखड़े, रंगमहल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, करुण-कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें आती हैं; पर ऐसी हँसानेवाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।"

"सरकार! बूढ़ों से सुने हुए वे नवाबी के सोने-से दिन अमीरों की रंग-रेलियाँ, दुखियों की दर्द-भरी आहें, रंग-महलों में घुल-घुल कर मरनेवाली बेगमें, अपने-आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। बड़े-बड़े घमण्ड चूर हो कर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसको—पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगा हूँ—सरकार, नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता!"

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। अंगीठी में कोयला दहक रहा था। शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने

लगा। सहसा नींद से चौंक कर ठाकुर साहब ने कहा—

"अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है। वह देखो, एक रुपया पड़ा है, उठा लो। लल्लू को भेजते जाओ।"

शराबी रुपया उठा कर धीरे से खिसका। लल्लू था ठाकुर साहब का जमादार। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कण्ठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। वह खड़ा हो कर सुनने लगा—

"तो सूअर रोता क्यों है? कुँअर साहब ने दो ही लात न लगायी हैं! कुछ गोली तो नहीं मार दी?" कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था; किन्तु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी भी सुनाई पड़ जाती। अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा—"मधुआ, जा, सो रह। नखरा न कर। नहीं तो उठूँगा, तो खाल उधेड़ दूँगा! समझा न?"

शराबी चुपचाप सुन रहा था। बालक की सिसकी और बढ़ने लगी। फिर उसे सुनाई पड़ा—"ले, अब भागता है कि नहीं? क्यों? मार खाने पर तुला है?"

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था। शराबी ने उसके छोटे-से सुन्दर गोरे मुँह को देखा। आँसू की बूँदें ढुलक रही थीं। बड़े दुलार से उसका मुँह पोंछते हुए उसे ले कर वह फाटक के बाहर चला आया। दस बज रहे थे। कड़ाके की सरदी थी। दोनों चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे-से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो

गया। अभी वह एक तंग गली पर रुका ही था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी। वह झिड़क कर बोल उठा—

"अब क्या रोता है रे छोकरे?"

"मैंने दिन-भर कुछ खाया नहीं!"

"कुछ खाया नहीं? इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिन-भर तुझे खाने को नहीं मिला?"

"यही तो मैं कहने गया था जमादार के पास। मार तो रोज़ खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँअर साहब का ओवर-कोट लिये खेल में दिन भर साथ रहा। सात बजे लौटा तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आग रख नहीं सका था। रोटी बनती तो कैसे। जमादार से कहने गया था—"

भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया। वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।

शराबी उसका हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ गली में ले चला। एक गन्दी कोठरी में, दरवाज़ा ढकेल कर बालक को लिये हुए वह भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलायी से मिट्टी की ढिबरी जला कर, वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा। एक पराठे का टुकड़ा मिला। शराबी उसे बालक के हाथ में दे कर बोला—"तब तक तू इसे चबा; मैं तेरा गढ़ा भरने के लिये कुछ और ले आऊँ—सुनता है रे छोकरे! रोना मत। रोएगा, तो

खूब पीटूँगा। मुझको रोने से बड़ा बैर है। पाजी कहीं का मुझे रुलाने......!"

शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ में एक रुपया था। "बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाय...दो आने की पकौड़ी...नहीं-नहीं, आलू-मटर, अच्छा न सही। चारों आने का माँस ही ले लूँगा। पर यह छोकरा! इसका गढ़ा जो भरना होगा! यह कितना खायगा? ओह! आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच किया ही नहीं। तो क्या चलूँ? पहले एक अद्धा ही ले लूँ?"

इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खड़ा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूल कर मिठाई-पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरे एक रुपये का सामान ले कर वह दूकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी में पहुँच कर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी। उनकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरह की तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उँडेलते हुए कहा—"नटखट कहीं का, हँसता है। सोंधी बास नाक में पहुँची न! ले, खूब ठूँस कर खा ले। और रोया कि पिटा!"

दोनों ने बहुत दिनों में मिलनेवाले दो मित्रों की तरह साथ बैठ कर भर-पेट खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने

शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया था। जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तान कर बड़बड़ाने लगा—"सोचा था, आज सात दिन पर भर-पेट पी कर सोऊँगा, लेकिन यह छोटा-सा रोना पाजी, न जाने कहाँ से आ धमका !"

एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोल कर कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिला कर मन-ही मन प्रश्न किया—"किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिये निर्दयता की सृष्टि की ? आह री नियति ! तब इसको ले कर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या ? दुर्भाग्य ! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता, जिस पर आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था, इसका पता क्यों लेने लगी ? इस छोटे-से पाजी ने मेरे जीवन के लिये कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है ! तब क्या करूँ ? कोई काम करूँ ? कैसे दोनों का पेट चलेगा ? नहीं, भगा दूँगा इसे, आँख तो खोले !"

बालक अँगड़ाई ले रहा था। उठा। शराबी ने कहा—"ले उठ, कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है और अपनी राह देख। तेरा नाम क्या है रे ?"

बालक ने हँस कर कहा—"मधुआ। भला, हाथ-मुँह भी न धोऊँ ? खाने लगूँ ? और जाऊँगा कहाँ ?"

"आह ! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय ? कह दूँ कि भाड़ में

जा; किन्तु यह आज तक दुःख की भट्टी में जलता ही तो रहा है। तो...।" यह चुपचाप घर से झल्ला कर सोचता हुआ निकला--"ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नहीं। तू ही इस कोठरी में रह।"

शराबी घर से निकला। गोमती किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था; पर कुछ भी सोच न सका। हाथ मुँह धोने में लगा। उजली धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गर्मी से सुखी हो कर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था कि किसीने पुकारा—

"भले आदमी, रहे कहाँ? सालों पर दिखाई पड़े। तुम को खोजते-खोजते मैं थक गया।"

शराबी ने चौंक कर देखा। वह कोई जान पहचान का तो मालूम होता था; पर कौन है, यह ठीक-ठीक न जान सका।

उसने फिर कहा—"तुम्हीं से कह रहा हूँ। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल; नहीं तो सड़क पर फेंक दूँगा। एक ही तो कोठरी, जिसका मैं दो रुपये किराया देता हूँ उसमें क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिये नहीं है?"

"ओहो! रामजी, तुम हो! भाई, मैं तो भूल ही गया था। तो चलो, आज ही उसे उठा लाता हूँ।" कहते हुए शराबी ने सोचा – अच्छी रही, उसी को बेच कर कुछ दिनों तक काम चलेगा।

गोमती नहा कर उसका साथी रामजी पास ही अपने घर पर पहुँचा। शराबी को कल देते हुए उसने कहा—"ले जाओ,

किसी तरह इससे मेरा पिण्ड छूटा।"

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी में पहुँच कर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—"क्यों रे, तू ने कुछ खा लिया कि नहीं ?"

"भर पेट खा चुका हूँ; और वह देखो, तुम्हारे लिये भी रख दिया है।" कह कर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस कोठरी को तर कर दिया। शराबी एक क्षण-भर चुप रहा। फिर चुपचाप जल पान करने लगा। मन-ही-मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ? चलूँ, फिर कल ले कर सान देने का काम चलता करूँ। दोनों का पेट भरेगा। यही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा। नहीं तो, दो बातें, क़िस्सा-कहानी इधर-उधर की कह कर अपना काम चला ही लेता था। पर अब तो बिना कुछ किये चरखा नहीं चलने का। जल पी कर बोला—"क्यों मधुआ ! अब तू कहाँ जायगा ?"

"कहीं नहीं।"

"यह लो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है कि मैं खोद-खोद कर तुझे मिठाई खिलाता रहूँगा ?"

"तब कोई काम करना चाहिए।"

"करेगा ?"

"जो कहो।"

"अच्छा, तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा। यह

कल तेरे लिए लाया हूँ। चल, आज से तुझे सान देना सिखाऊँगा। कहाँ रहूँगा, इसका कुछ ठीक नहीं। पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न?"

"कहीं भी रह सकूँगा, पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा!"

शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं।

शराबी ने मन-ही-मन कहा—"बैठे-बिठाये यह हत्या कहाँ से लगी? अब तो शराब न पीने की भी सौगन्ध लेनी पड़ी।"

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा। एक गट्ठर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए।

शराबी ने पूछा—"तू किसे उठाएगा?"

"जिसे कहो।"

"अच्छा तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो?"

"कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी। मेरे बाप मर गये।"

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठा कर खड़ा हो गया। बालक ने गठरी लादी। दोनों कोठरी छोड़ कर चल पड़े।

जयशंकर प्रसाद

ईदगाह

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक़ है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैय्यारियाँ हो रही हैं। किसी के कुर्ते में बटन नहीं है। पड़ोस के घर से सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दो-पहर हो जाएगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना दो-पहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दो-पहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए घर में दूध और शक्कर है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवैयाँ

खाएँगे। वे क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी क़ायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर चौधरी आँखें बदल लें तो यह सारी ईद मोहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खज़ाना निकाल कर गिनते हैं और खुश हो कर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है एक, दो, दस, बारह! उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीजें लाएँगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैज़े की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला, क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है।

उसके अब्बाजान रुपए कमाने गए हैं। बहुत-सी थैलियाँ ले कर आएँगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गई हैं; इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते

नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है जिसका गोटा काला पड़ गया है फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें ले कर आएँगी तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती! इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं; लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने जीने से क्या मतलब? उसके अन्दर प्रकाश है; बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल-बल ले कर आए, हामिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जा कर दादी से कहता है तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवाय और कौन है? उसे कैसे अकेले मेले जाने दे। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो! नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं-सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे! पैर में छाले पड़ जाएँगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी; लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा? पैसे होते तो

बीच में लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीज़ जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फ़हीमन के कपड़े सिए थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए; लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती। हामिद के लिए कुछ नहीं है, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटुए में। यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगाए। धोबन, नाइन, मेहतरानी और चुड़िहारिन सभी तो आएँगे। सभी को सेवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस-किस से मुँह चुराएगी। और क्यों मुँह चुराए? साल भर का त्यौहार है। ज़िन्दगी खैरियत से रहे, उनकी तक़दीर भी तो उसीके साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जाएँगे।

गाँव से मेला चला और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सब-के-सब दौड़ कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े हो कर साथवालों का इन्तज़ार करते। यह और क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गये हैं। वह कभी थक सकता है? शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चार-दीवारी बनी हुई है। पेड़ में आम और लीचियाँ

लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठा कर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फर्लांग पर हैं। खूब हँस रहे है। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कालेज है; यह क्लबघर है। इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे। सब लड़के नहीं हैं जी ! बड़े-बड़े आदमी हैं; सच। उनकी बड़ी-बड़ी मूछें हैं। इतने बड़े हो गये, अभी तक पढ़ने जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़ कर। हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बडे लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुरानेवाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या। क्लबघर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदे की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं और बड़े बड़े तमाशे होते हैं; पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूछों-दाढ़ी वाले और मेमें भी खेलतीं हैं। हमारी अम्माँ को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें। घुमाते ही लुढ़क जाएँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला क़सम।

मोहसिन बोला—चलो, मनों आटा पीस डालती हैं। ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी तो हाथ काँपने लगेंगे। सैकड़ों घड़े

पानी रोज़ निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अन्धेरा आ जाए।

महमूद—लेकिन दौड़ती तो नहीं, उछल कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन—हाँ उछल कूद तो नहीं सकतीं; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी तो अम्माँ इतना तेज़ दौड़ीं कि मैं उन्हें न पा सका, सच।

आगे चले। हलवाइयों की दुकानें शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है? देखो न, एक एक दुकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आ कर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक जिन्नात हर दुकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है; बिलकुल ऐसे ही रुपए।

हामिद को यकीन न आया, ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जाएँगे।

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपए की क्या कमी? जिस खज़ाने में चाहें चले जाएँ। लोहे के दरवाज़े तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीरे, जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए, उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जाएँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। ज़मीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाए।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे? कोई मुझे वह मन्त्र बता दे तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज़ चोरी जाए, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमेराती का बछड़ा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झक मार कर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरन्त बता दिया, मवेशीखाने में है और वहीं मिला। जिन्नात आ कर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं।

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है!

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिस्टेबिल क़वायद करते हैं। रैटन! फ़ाय फ़ो! रात को बेचारे घूम-घूम कर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जाएँ। मोहसिन ने प्रतिवाद किया। ये कानिस्टेबिल पहरा देते हैं? तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हज़रत, ये ही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से कहते हैं, चोरी करो, आप दूसरे मुहल्ले में जा कर 'जागते रहो! जागते रहो!' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं।

मेरे मामू एक थाने में कानसटिबल हैं। बीस रुपये महीना पाते हैं लेकिन ५०) महीना घर भेजते हैं। अल्लाह क़सम। मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं? हँस कर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।

हामिद ने पूछा—ये लोग चोरी करवाते हैं, तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखा कर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा? पकड़ने वाले तो ये लोग खुद हैं; लेकिन अल्लाह इन्हें सज़ा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए मामू के घर में आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बर्तन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्लाह क़सम पेड़ के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज़ लाये तो बरतन-भाण्डे आए।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं?

'कहाँ पचास, कहाँ सौ। पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आएँ।'

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं। एक-से-एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए। कोई एक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग, ग्रामीणों का यह छोटा सा दल, अपनी

विपन्नता से बेख़बर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थीं। जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार बार हॉर्न की आवाज़ होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नज़र आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया है। नीचे पक्का फ़र्श है। जिस पर जाज़िम बिछा हुआ है और रोज़ेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्की जगत के नीचे तक, जहाँ जाज़िम भी नहीं है। नए आने वाले पीछे की कतार में आ कर खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुन्दर संचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं। फिर सब के सब एक साथ खड़े हो जाते हैं। एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है। जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाएँ और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ विस्तार और अनन्तता, हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थीं। मानों भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोये हुए है।

[२]

नमाज़ खतम हो गई है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौनों की दुकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिण्डोला है। एक पैसा दे कर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए। यह चरखी है। लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा दे कर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मज़ा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सफी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई ज़रा-सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दुकानों की कतार लगी हुई है। तरह तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन और साधु। वाह! कितने सुन्दर खिलौने हैं। अब बोलना ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ी वाला, कन्धे पर बँदूक रखे हुए। मालूम होता है अभी क़वायद किये चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है। ऊपर मशक रखे हुए है! मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है कितना प्रसन्न है! शायद कोई

गीत गा रहा है। बस मशक से पानी ऊँडेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है! उनके मुख पर काला चोगा, नीचे सफ़ेद अचकन, अचनक की सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। ये सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छुट पड़े, तो चूर चूर हो जाए। ज़रा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाए। ऐसे खिलौने ले कर वह क्या करेगा! किस काम के!

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज़ पानी दे जाएगा; साँझ सबेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आएगा, तो फ़ौरन बन्दूक फैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज़ कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौनों की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जाएँ; लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं; लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक़ है। हामिद ललचाता रह जाता है।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाब जामुन, किसी ने सोहन हलवा। मज़े से खा रहे हैं। हामिद बिरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन ही पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ ले कर खाता ? ललचायी आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता—हामिद, रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार हैं !

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकाल कर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है।

महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजा कर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा, अबकी ज़रूर देंगे हामिद, अल्ला क़सम, ले जा।

हामिद—रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं ?

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे ?

महमूद—हम से गुलाब जामुन ले जाओ हामिद। मोहसिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?

महमूद—हम समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएँगे। तो हमें ललचा ललचा कर खाएगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीज़ों की, कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था वे सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद एक लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती हैं; तो हाथ जल जाता है; अगर वह चिमटा ले जा कर दादी को दे, तो कितनी प्रसन्न होंगी ! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में—एक काम की चीज़ हो जायेगी। खिलौने से क्या फ़ायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। ज़रा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौने को कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट कर बराबर हो जाएँगे। चिमटा कितने काम की चीज़ है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आये तो चटपट चूल्हे से आग निकाल कर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाज़ार आएँ, औरइतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज़ हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सबके-सब शर्बत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं! इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे

साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खाएँ मिठाइयाँ; आप मुँह सड़ेगा, फोड़े फुंसियाँ निकलेंगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुराएँगे और मार खाएँगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों ख़राब होगी। अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़ कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है। हज़ारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखाएँगी। सारे गाँव में चर्चा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खाएँ मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने किसी का मिज़ाज क्यों सहूँ। मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आख़िर अब्बाजान कभी-न-कभी आएँगे। अम्माँ भी आएँगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा कितने खिलौने लोगे? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ यह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ा कर खाने लगे। सब-के सब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें मेरी बला से। उसने दुकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है?

दुकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देख कर कहा—'वह तुम्हारे काम का नहीं है जी !'

'बिकाऊ है कि नहीं ?'

'बिकाऊ क्यों नहीं है और यहाँ क्यों लाद लाए हैं' ?

'तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है ?,

'छः पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल बैठ गया।

'ठीक ठीक बताओ !'

ठीक ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना है लो, नहीं चलते बनो।'

हामिद ने कलेजा मज़बूत करके कहा—'तीन पैसे लोगे ?'

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं। बुला कर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा, मानों बन्दूक है। और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। ज़रा सुनें, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँस कर कहा- यह चिमटा क्यों लाया पगले ! इसे क्या करेगा ?

हामिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटक कर कहा—ज़रा अपना भिश्ती ज़मीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं है ? अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक़ हो गई । हाथ में ले लिया फकीरों का चिमटा हो गया, चाहूँ तो इससे मँजीरे का काम ले सकता हूँ । एक चिमटा जमा दूँ; तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय । तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाएँ, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते । मेरा बहादुर शेर है—चिमटा ।

सम्मी ने खंजरी ली थी । प्रभावित हो कर बोला—मेरी खंजरी से बदलोगे ? दो आने की है ।

हामिद ने खंजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खंजरी का पेट फाड़ डाले । बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी । ज़रा-सा पानी लग जाय तो ख़तम हो जाय । मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफ़ान में बराबर डटा-खड़ा रहेगा ।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया; लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं । फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज़ हो रही है । घर पहुँचने की जल्दी हो रही है । बाप से ज़िद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता । हामिद है बड़ा चालाक । इसलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे ।

अब बालकों के दो दल हो गये हैं । मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ़ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ । शास्त्रार्थ हो रहा है । सम्मी तो विधर्मी हो गया । दूसरे पक्ष से

जा मिला; लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जाएँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक छोड़ कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चोगे में मुँह छिपा कर ज़मीन पर लेट जाएँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे-हिन्द लपक कर शेर की गरदन पर सवार हो जाएगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

हामिद ने आखिरी ज़ोर लगा कर कहा—मेरा चिमटा भिश्ती को एक डाँट बताएगा, तो दौड़ता हुआ पानी ला कर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया; पर महमूद ने कुमुक पहुँचाई—अगर बचा पकड़ जायें तो अदालत में बंधे-बंधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के ही पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—हमें पकड़ने कौन आएगा ?

नूरे ने अकड़ कर कहा—यह सिपाही बन्दूकवाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ा कर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रुस्तमे-हिन्द को पकड़ेंगे! अच्छा लाओ, अभी ज़रा कुश्ती हो जाय। इसकी सूरत देख कर दूर से भागेंगे। पकड़ेंगे क्या

बेचारे ?

मोहसिन को एक नयी चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज़ आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जाएगा; लेकिन यह सब न हुआ। हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं। जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेडियों की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में कूदना वह काम है, जो यह रुस्तमे-हिन्द ही कर सकता है।

महमूद ने एक ज़ोर लगाया—वकील साहब कुरसी-मेज़ पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बाबरचीखाने में ज़मीन पर पड़ा रहेगा।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने। चिमटा बाबरचीखाने में पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है।

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बाबरचीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जा कर उन्हें ज़मीन पर पटक देगा और उनका क़ानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खासी गाली-गलौज़ थी; लेकिन क़ानून को पेट में डालनेवाली बात छा गई, ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह देखते रह गए, मानों कोई धेलचा कनकौआ किसी गण्डेवाले कनकौए को काट गया हो। कानून मुँह से

बाहर निकलनेवाली चीज़ है। इसको पेट के अन्दर डाल दिया जाना, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तुमे-हिन्द है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारनेवालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किए; पर कोई काम की चीज़ न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया; सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा? टूट-फूट जाएँगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों।

सन्धि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—ज़रा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती ले कर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किये।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी चिमटा बारी-बारी से सब के हाथ में गया; और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए। कितने खूबसूरत खिलौने हैं!

हामिद ने हारनेवालों के आँसू पोंछे। मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सन्तोष नहीं

होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा ?

महमूद—दुआ के लिए फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्माँ ज़रूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले ?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देख कर किसी की माँ इतनी ख़ुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देख कर होगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल ज़रूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तुमे-हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिये। महमूद ने केवल हामिद को अपना साथी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

३

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई। मेलेवाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़ कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे ख़ुशी के उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे

आ रहे और—सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मार-पीट हुई। दोनों खूब रोये। उनकी माँ यह शोर सुन कर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो दो चाँटे और लगाये।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील ज़मीन पर या ताक पर तो बैठ नहीं सकते! उनकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूँटि [illegible] ईं [illegible] र लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर काग़ज़ का एक कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पँखा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो? क़ानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जाएगी या नहीं? बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगा। मालूम नहीं, पंखे की हवा से, या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्ग-लोक से मृत्यु-लोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया। फिर बड़े ज़ोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थियाँ घूर पर डाल दी गईं।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया; लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आयी, उसमें कुछ लाल रंग के फटे पुराने चिथड़े बिछाये गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटें। महमूद ने

यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगा। उसके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोनेवाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी चाहिए; महमूद को ठोकर लग जाती है, टोकरी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिए ज़मीन पर आ जाते हैं। उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्य क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था; न बैठ सकता था। अब वह सिपाही सन्यासी हो गया है, अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफ़ा खुरच दिया गया। अब उसका जितना रूपान्तर चाहो, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम लिया जाता है। अब मियाँ हामिद का हाल सुनिये। अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठा कर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देख कर वह चौंकी।

'यह चिमटा कहाँ था?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे में ?'

'तीन पैसे दिये।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहरा हुआ कुछ खाया न पीया। लाया क्या, चिमटा। सारे मेले में तुझे और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया ?

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा - तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं; इसीलिए मैंने लिया।

बुढ़ि का क्रोध तुरंत स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था। खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है ! दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देख कर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना जब्त इससे हुआ कैसे ? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद् हो गया।

और एक विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैला कर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूंदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता ?

--प्रेमचन्द

खूनी

उसका नाम मत पूछिये। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आँखों से दूर करने को पागल हुआ फिरता हूँ। पर वह नाम और सूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हूँ, वह निडर है; मैं रोता हूँ, वह हँसता है; मैं मर जाऊँगा, वह अमर है।

मेरी उसकी कभी की जान-पहचान न थी। दिल्ली में हमारी गुप्त सभा थी, सब दल के आदमी आये थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था, वह पास ही खड़ा एक कुत्ते के पिल्ले से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आ कर सहज गम्भीर स्वर में धीरे से कहा--"इस युवक को अच्छी तरह पहचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।"

नायक चले गये और मैं युवक की तरफ झुका। मैंने समझा शायद नायक हम दोनों को कोई एक काम सुपुर्द करेगा।

मैंने युवक से हँस कर कहा—"कैसा प्यारा जानवर है!" युवक ने कच्चे दूध के समान स्वच्छ आँखें मेरे मुख पर डाल कर कहा--"काश! मैं इसका सहोदर भाई होता!" मैं ठठा कर हँस पड़ा। वह मुस्करा कर रह गया। कुछ बातें हुईं। उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया।

दिन पर दिन व्यतीत हुए। अछूते प्यार की धाराएँ दोनों हृदयों में उमड़ कर एक-धार हो गईं, सरल, अकपट व्यवहार पर दोनों मुग्ध हो गये। वह मुझे अपने गाँव में ले गया, किसी तरह न माना। गाँव के एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गाँव के ज़मींदार का बेटा था—इकलौता बेटा था, हृदय और सूरत का एक-सा। उसकी माँ ने दो दिन में ही मुझे 'बेटा' कहना शुरू कर दिया। अपने होश के दिनों में मैंने वहाँ सात दिन माता का स्नेह पाया। फिर चला आया। फिर गया और आया। अब तो बिना उसके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों में अटक रहे थे। एक दिन उन्मत्त प्रेम के आवेश में उसने कहा था—"किसी अघट घटना से जो हम दोनों में से एक स्त्री बन जाय तो मैं तो तुम से व्याह ही कर लूँ।"

नायक से कई बार पूछा—"क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा था?" वह सदा यही कहते—"समय पर जानोगे।" गुप्त सभा की भयङ्कर गम्भीरता सब लोग नहीं जान सकते। नायक मूर्त्तिमान भयङ्कर गम्भीरता थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका चित्र मिला। वह मेरी पॉकेट में अब भी धरा है। पर किसी को दिखाऊँगा नहीं। उसे देख कर दो साँस सुख से ले लेता हूँ, आँसू बहा कर हलका हो जाता हूँ। किसी पुराने रोगी की जैसे दवा खूराक बन जाती है. मेरी वेदना की भी वह चिट्ठी खूराक बन गई है।

चिट्ठी पढ़ भी न पाया था, नायक ने बुलाया। मैं सामने

जा कर सरल भाव से खड़ा हो गया। बारहों प्रधान हाज़िर थे। सन्नाटा भीषण सत्य की तसवीर खींच रहा था। एक ही मिनट में मैं गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायक की मर्म-भेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रों में पड़ गई, जैसे तप्त लोहे के तीर आँख में घुस गये हों ? मैं पलक मारना भूल गया, मानों नेत्रों में आग लग गई हो। पाँच मिनट बीत गये। नायक ने गम्भीर वाणी से कहा—"सावधान ! क्या तुम तैयार हो ?"

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीता की रक्तवर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों हाथों से उठा कर सिर पर चढ़ा ली।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण-भर सन्नाटा रहा। नायक ने एकाएक उसका नाम लिया और क्षण-भर में छः नली पिस्तौल मेज पर रख दी।

वह छः अक्षरों का नाम उस पिस्तौल की छहों गोलियों की तरह मस्तक में घुस गया। पर मैं कम्पित नहीं हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमपूर्वक मैंने पिस्तौल उठा छाती पर रखी और स्थान से हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था अपने पत्र और मेरे प्रेम-पर इतना भरोसा उसे था; देखते ही लिपट गया। घर गये, चार दिन रहे। वह क्या करता है, क्या कहता है, मैं देख-सुन नहीं सकता था। शरीर सुन्न हो गया था।

आत्मा दृढ़ थी। हृदय धड़क रहा था, विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जल पान करके हम स्टेशन चले। ताँगा नहीं लिया, जङ्गल में घूमते-घूमते जाने का विचार था। काव्यों की बढ़ बढ़ कर आलोचना होती चलती थी उसी मस्ती में वह मेरे मन की उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और खिली। पसीने बह चले। मैंने कहा—"चलो कहीं छाँह में बैठें।" घना कुञ्ज सामने था, वहीं बैठ गये। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकाल कर उसने कहा—"सिर्फ दो ही पके थे। घर के बगीचे के हैं। यहीं बैठ कर खाने के लिए लाया हूँ। एक तुम्हारा एक मेरा।"

मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था, उसका ध्यान उसी के स्वाद में था। मैंने धीरे-से पिस्तौल निकाली, घोड़ा चढ़ा था, अकम्पित स्वर में उसका नाम ले कर कहा—"अमरूद फेंक दो और भगवान का नाम लो। मैं तुम्हें गोली मारता हूँ।"

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा—"बहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो।" मेरा धैर्य छूट रहा था। मैंने दबे कंठ से कहा —"अच्छा, खा लो।" खा कर वह खड़ा हो गया, सीधा तन कर। फिर उसने कहा—"अच्छा, मारो गोली!" मैंने कहा, हँसी मत समझो. मैं तुम्हें गोली ही मारता हूँ, भगवान का नाम लो।" उसने हँसी में ही भगवान का नाम लिया और फिर वह नक़ली गम्भीरता से खड़ा हो गया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दबा कर कहा—"ईश्वर की सौगन्ध! हँसी मत समझो, मैं तुम्हें

गोली मारता हूँ !"

मेरी आँखों से वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आँखें मिला कर उसने कहा—"मारो।"

एक क्षण-भर भी विलम्ब करने से मैं कर्तव्य-विमुख हो जाता। पल-पल में साहब डूब रहा था। दनादन दो शब्द गूँज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोलियाँ छाती को पार कर गईं।

मैं भागा नहीं। भय से इधर-उधर देखा भी नहीं। रोया भी नहीं। मैंने उसे गोद में उठाया। मुँह की धूल पोंछी, रक्त साफ किया। आँखों में इतनी ही देर में कुछ-का कुछ हो गया था। देर तक लिए बैठा रहा, जैसे माँ सोते बच्चे के—जागने के भय से—निश्चल बैठी रहती है।

मैं उठा। ईंधन चुना, चिता बनाई और जलाई। अन्त तक बैठा रहा।

× × ×

बारहों प्रधान हाज़िर थे। उसी स्थान पर जा कर मैं खड़ा हुआ। नायक ने नीरव हाथ बढ़ा कर पिस्तौल माँगी। पिस्तौल दे दी। कार्यसिद्धि का संकेत सम्पूर्ण हुआ। नायक ने खड़े हो कर वैसे ही गम्भीर स्वर में कहा—"तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते हैं।'

मैंने कहा—"तेरहवें प्रधान की हैसियत से मैं पूछता हूँ कि उसका अपराध मुझे बताया जाय।"

नायक ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया—"वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था, हमें उस पर सरकारी मुख़बिर होने का संदेह था!" मैं कुछ कहने योग्य न रहा।

नायक ने वैसे ही गम्भीरता से कहा—"नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेच्छ एक पुरस्कार माँग सकते हो।"

अब मैं रो उठा। मैंने कहा—मुझे मेरे वचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त करो, मैं उसी के समुदाय का हूँ। तुम लोगों में नंगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो, तो तुम अपने को देशभक्त कहने में संकोच करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं से मैं घृणा करता हूँ। मैं हत्यारों का साथी, सलाही और मित्र नहीं रह सकता, तुम तेरहवीं कुर्सी जला दो।"

नायक को क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर में कहा—"तुम्हारे इन शब्दों की सज़ा मौत है, पर नियमानुसार तुम्हें क्षमा पुरस्कार में दी जा सकती है।"
मैं उठ कर चला गया।

दस वर्ष व्यतीत हो गये। देश भर में घूमा, कहीं ठहरा नहीं। भूख, प्यास, विश्राम और शान्ति की इच्छा ही मर गई दीखती है। बस, अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी है। मेरा वारण्ट निकला था। मन में आया; फाँसी पर जा चढ़ूँ, फिर सोचा, मरते ही उस सज्जन को भूल जाऊँगा,

मरने में अब क्या स्वाद है ? जीना चाहता हूँ। किसी तरह सदा जीते रहने की लालसा मन में बसी है। जीते-जी ही मैं उसे देख और याद कर सकता हूँ।

—श्री चतुरसेन शास्त्री

साइकिल की सवारी

भगवान् ही जानता है कि जब मैं किसी को साइकिल की सवारी करते या हार्मोनियम बजाते देखता हूँ तब मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है! सोचता हूँ, भगवान् ने ये दोनों विद्याएँ भी खूब बनाई हैं। एक से समय बचता है, दूसरी से समय कटता है। मगर तमाशा देखिये, हमारे प्रारब्ध में कलियुग की ये दोनों विद्याएँ नहीं लिखी गईं। न साइकिल चला सकते हैं, न बाजा ही बजा सकते हैं। पता नहीं, कब से यह धारणा हमारे मन में बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं, मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते।

शायद १९३२ की बात है कि बैठे-बैठे ख्याल आया, चलो साइकिल चलाना सीख लें। इसकी शुरूआत यों हुई कि हमारे लड़के ने चुपचुपाते में यह विद्या सीख ली और हमारे सामने से सवार हो कर निकलने लगा। अब आप से क्या कहें कि लज्जा और घृणा के कैसे-कैसे ख्याल मेरे मन में उठे। सोचा, क्या हमीं ज़माने भर में फिसड्डी रह गये हैं। सारी दुनिया चलाती है, ज़रा-ज़रा से लड़के चलाते हैं; मूर्ख और गँवार चलाते हैं, हम तो परमात्मा की कृपा से फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आखिर इसमें मुश्किल क्या है? कूद कर चढ़ गये और तावड़-तोड़ पाँव मारने लगे। और जब

देखा कि कोई राह में खड़ा है तब टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोधपूर्ण आँखों से उसकी तरफ देखते हुए निकल गये। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहे की सवारी का! अब ऐसा मालूम हुआ कि हम "बे-फ़िज़ूल" ही मरे जाते थे। कुछ ही दिनों में सीख लेंगे। बस महाराज! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाय, परवाह नहीं।

दूसरे दिन हमने अपने फटे पुराने कपड़े तलाश किये और उन्हें ले जा कर श्रीमतीजी के सामने पटक दिया कि इनकी जरा मरम्मत तो कर दो।

श्रीमतीजी ने हमारी तरफ़ अचरज भरी दृष्टि से देखा और कहा—"इन कपड़ों में अब जान ही कहाँ से है जो मरम्मत करूँ। ये तो फेंक दिये थे। आप कहाँ से उठा लाये? वहीं जा कर डाल आइए।"

हमने मुसकरा कर श्रीमतीजी की तरफ़ देखा। मुँह से कहा—"तुम हर समय बहस न किया करो। आखिर मैं इन्हें ढूँढ-ढाँढ कर लाया हूँ तो ऐसे ही तो नहीं उठा लाया। कृपा करके इनकी मरम्मत कर डालो।"

मगर श्रीमतीजी बोलीं—"पहले बताओ, इनका क्या बनेगा?"

हम चाहते थे, घर में किसी को कानों-कान खबर न हो और हम साइकिल सवार बन जाएँ। और इसके बाद जब इस विद्या के पण्डित हो जाएँ तब एक दिन जहाँगीर के मकबरे

को जाने का निश्चय करें। घरवालों को ताँगे में बिठा दें, और कहें, तुम चलो, हम दूसरे ताँगे में आते हैं। जब वे चले जाएँ तब साइकिल पर सवार हो कर उनको रास्ते में जा मिलें! हमें साइकिल पर सवार देख कर उन लोगों की क्या हालत होगी! हैरान हो जाएँगे; आँखें मल-मल कर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं है! परन्तु हम गरदन टेढ़ी करके दूसरी तरफ देखने लग जाएँगे, जैसे हमें कुछ मालूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिए साधारण बात है।

मगर श्रीमतीजी ने कहा—"पहले बताओ, इनका क्या बनेगा?" झख मार कर बताना पड़ा कि रोज़-रोज़ ताँगे का खर्च मारे डालता है। साइकिल चलाना सीखेंगे।

श्रीमतीजी ने बच्चे को सुलाते हुए हमारी तरफ देखा और मुसकरा कर बोलीं—"मुझे तो आशा नहीं कि आपसे यह बेल मँढ़े चढ़ सके। खैर यत्न कर देखिये। मगर इन कपड़ों का क्या बनेगा?"

हमने ज़रा रोब से कहा—"आख़िर बाइसिकिल से एक दो बार गिरेंगे या नहीं? और गिरने से कपड़े फटेंगे या नहीं? जो मूर्ख हैं, वे नये कपड़ों का नुकसान कर बैठते हैं। जो बुद्धिमान हैं, वे पुराने कपड़ों से ही काम चलाते हैं।"

मालूम होता है, हमारी इस युक्ति का जवाब हमारी स्त्री के पास कोई न था, क्योंकि उन्होंने उसी समय मशीन मँगवा कर उन कपड़ों की मरम्मत शुरू कर दी।

इधर हमने बाज़ार जा कर जम्बक के दो डिब्बे खरीद लिये कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज़ किया जा सके। इसके बाद जा कर एक खुला मैदान तलाश किया, ताकि दूसरे दिन से साइकिल-सवारी का काम शुरू किया जा सके।

अब यह सवाल हमारे सामने था कि अपना उस्ताद किसे बनावें। इसी उधेड़बुन में बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गये और बोले—"क्यों भाई, हो जाय एक बाजी शतरंज की। ज़रा आवाज़ दो, लड़के को, शतरंज और मुहरे उठा लावे।"

हमने सिर हिला कर जवाब दिया—"नहीं साहब! आज तो जी नहीं चाहता।"

तिवारीजी ने अपने घुटे हुए सिर से टोपी उतार कर हाथ में ले ली और सिर पर हाथ फेर कर बोले—"हम तो इतनी दूर से चल कर आये हैं कि एक दो बाज़ियाँ खेलेंगे, तुमने कह दिया, जी नहीं चाहता।"

"यदि जी न चाहे तो क्या करें?"

यह कहते-कहते हमारा गला भर आया। तिवारीजी का दिल पसीज़ गया। हमारे पास बैठ कर बोले—"अरे भाई; मामला क्या है? स्त्री से झगड़ा तो नहीं हो गया?"

हमने कहा—"तिवारी भैया, क्या कहें? सोचा था, लाओ, साइकिल की सवारी सीख लें! मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता जो हमारी सहायता करे। बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख्याल में।"

तिवारीजी ने हमारी तरफ़ बेबसी की आँखों से ऐसे देखा मानों हमको कोई खज़ाना मिल रहा है, और वे खाली हाथ रहे जाते हैं। बोले—"मेरी मानो तो रोग न पालो। अब इस आयु में साइकिल पर चढ़ोगे ? और फिर यह भी कोई सवारियों में सवारी है कि डंडे पर उकड़ूँ बैठे हैं; और पाँव चला रहे हैं। अजी लानत भेजो इस ख्याल पर, और आओ एक बाज़ी खेलें कहने लगे, सैकिल चलाना सीखेंगे। क्या टाँगे टूट गये हैं ?"

मगर हमने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। साफ़ समझ गये कि तिवारी ईर्ष्या की आग में फुँका जाता है। मुँह फुला कर हमने कहा—"भाई तिवारी, हम तो ज़रूर सीखेंगे। कोई आदमी बताओ।"

"आदमी तो ऐसा है एक, मगर वह मुफ्त नहीं सिखायेगा। फीस लेगा। दे सकोगे ?"

"कितने दिन में सिखा देगा ?"

"यही दस बारह दिन में !"

"और फीस क्या लेगा हमसे ?"

औरों से पच्चीस लेता है। तुमसे बीस ले लेगा हमारी खातिर !"

हमने सोचा—दस दिन में सिखाएगा, और बीस रुपये फ़ीस लेगा। दस दिन—बीस रुपये। बीस रुपये—दस दिन। अर्थात् दो रुपये रोज़ाना, आर्थात् साठ रुपये महीना, और वह भी एक दो घंटों के लिए। ऐसी तीन-चार ड्यूटियाँ मिल जायँ तो

ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया। हमने तिवारीजी से तो इतना ही कहा कि जा कर मामला तय कर आओ, मगर जी में खुश हो रहे थे कि साइकिल चलाना आ जाए, एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दें, और तीन-चार सौ रुपये मासिक कमाने लगें।

इधर तिवारीजी मामला तय करने गये, उधर हमने यह शुभ समाचार जा कर श्रीमतीजी को सुना दिया कि कुछ दिनों के बाद हम एक ऐसा स्कूल खोलने वाले हैं जिसमें तीन-चार सौ रुपये महीने की आमदनी होगी।

श्रीमतीजी बोलीं—"तुम्हारी इतनी आयु हो गई, मगर ओछापन न गया। पहले आप तो सीख लो, फिर स्कूल खोल लेना। मैं तो समझती हूँ कि तुम सीख ही न सकोगे; दूसरों को सिखाना तो दूसरी बात है।

हमने बिगड़ कर कहा—"यह तुम में बड़ी बुरी आदत है कि हर काम में टोंक देती हो। हमसे बड़े-बड़े सीख रहे हैं तो हम क्या न सीख सकेंगे? पहले तो शायद सीखते, शायद न सीखते, मगर अब जब तुमने टोंका है तब ज़रूर सीखेंगे। तुम भी कहोगी।"

श्रीमतीजी बोलीं—"मैं तो चाहती हूँ तुम हवाईजहाज़ चलाओ; यह बाइसिकिल क्या चीज़ है? पर तुम्हारे स्वभाव से डर लगता है। एक बार गिरोगे तो देख लेना, बाइसिकिल वहीं फेंक-फांक कर चले आओगे।"

इतने में तिवारीजी ने बाहर से आवाज़ दी। हमने जा कर देखा तो उस्ताद साहब खड़े थे। हमने शरीफ विद्यार्थियों के समान श्रद्धा से हाथ बाँध कर प्रणाम किया, और चुपचाप खड़े हो गये।

तिवारीजी--"यह तो बीस पर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से मनाया है, पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।"

हम—"अरे भाई, हम देंगे; दुनियाँ लाख बुरी है, मगर फिर भी भले आदमियों से खाली तो नहीं है। यह बीस रुपया तो चीज ही क्या है? हम अपना धर्म लाखों के लिए भी न गँवावेंगे। बस एक बार हमें साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें, हम इनकी क्या-क्या सेवा करते हैं।"

मगर उस्तादसाहब नहीं माने, बोले—"फीस पहले लेंगे"

हम—"और यदि आपने नहीं सिखाया तो—"

उस्ताद—"नहीं सिखाया तो फीस लौटा देंगे।"

हम—"और यदि फ़ीस नहीं लौटाई तो—"

उस्ताद—'इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं, मगर इतना कह सकता हूँ कि ऐसी बेईमानियाँ मुझे बदनाम न कर देंगी?"

इस पर तिवारीजी ने कहा—"अरे साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहर में रहना हराम कर दूँ, बाज़ार में निकलना बन्द कर दूँ। फीस ले कर भाग जाना कोई हँसी

खेल है ?"

आज जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है तब हमने फ़ीस के रुपये ला कर उस्ताद की भेंट कर दिए और कहा—"उस्ताद कल सवेरे सवेरे ही आ जाना। हम तैयार रहेंगे। हमने इस काम के लिए कपड़े भी बनवा लिये हैं। और अगर गिर पड़े तो घाव पर लगाने के लिए जम्बक भी खरीद लिया है। और हाँ, हमारे पड़ोस में जो मिस्त्री रहता है उससे साइकिल की माँग ली है। आप सवेरे ही चले आवें तो हरि का नाम ले कर शुरू कर दें।"

तिवारीजी और उस्ताद ने हमें हर तरह से तसल्ली दी, और चले गये। इतने में हमें याद आया कि एक बात कहनी भूल गये। नंगे पाँव भागे और उन्हें बाज़ार में जा लिया। वे हैरान थे। हमने हाँफते-हाँफते कहा—"उस्ताद, हम शहर के पास नहीं सीखेंगे, लारेंस बाग में जो मैदान है, वहाँ सीखेंगे। वहाँ एक तो भूमि नर्म है, चोट कम लगती है। दूसरे वहाँ कोई देखता नहीं है।"

३

अब रात को आराम की नींद कहाँ ? बार-बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। सोते थे तो साइकिल के सपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकिल

से गिर कर जख्मी हो गये हैं। दूसरी बार देखा कि हम साइकिल पर सवार हैं, साइकिल आप से आप हवा में चल रही है और लोग हमारी तरफ आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहे हैं।

जब आँखें खुलीं तो दिन निकल आया था। जल्दी से जा कर वे पुराने कपड़े पहन लिए; जम्बक का डिब्बा हाथ में ले लिया और नौकर को भेज कर मिस्त्री से साइकिल मँगवा ली। इसी समय उस्ताद साहब भी आ गये और हम भगवान् का नाम ले कर लारेंसबाग की ओर चले। लेकिन अभी घर से निकले ही थे कि बिल्ली रास्ता काट गई, और एक लड़के ने छींक दिया। क्या कहें, हमें कैसा क्रोध आया, उस नामुराद बिल्ली पर और उस शैतान लड़के पर! मगर क्या करते? दाँत पीस कर रह गये। एक बार फिर भगवान् का पावन नाम लिया और आगे बढ़े। पर बाज़ार में पहुँच कर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ देखता है, मुसकराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है? सहसा देखा कि हमने जल्दी और घबराहट में पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिये हैं, और लोग इसी पर हँस रहे हैं। सिर मुँडाते ही ओले पड़े।

हमने उस्ताद से माफ़ी माँगी और घर लौट आए अर्थात् हमारा पहला दिन मुफ्त में गया।

दूसरे दिन निकले। हमारे घर के पास जो लाला साहब रहते हैं वे सामने आ गये और मुसकरा कर बोले—"कहिये,

कहाँ जा रहे हैं ?"

ये लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी हैं, लेकिन इनकी एक आदत बहुत बुरी है, जिससे मिलते हैं उसी से पूछते हैं, "कहाँ चले ?" कई बार समझाया कि जब कोई काम पर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाय तो वह काम कभी नहीं होता और जिसका काम बिगड़ जाता है वह 'कहाँ' पूछनेवाले को गालियाँ देता है, मगर लाला साहब पर ज़रा भी असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचने का कितना यत्न किया, किस-किस तरफ मुँह मोड़ा, मगर उनकी 'कहाँ' की तोप से कौन बच सकता था ? महात्माजी ने सामने आ कर गोला दाग़ ही तो दिया।

हमने जल-भुन कर जवाब दिया—"नरक को जा रहे हैं। आप भी चलेंगे क्या ?"

लाला—"भगवान् जानता है, मुझे मालूम न था कि आप किसी काम के लिए जा रहे हैं।"

हम—"मानो हम बेकार घूमा करते हैं।"

लाला—"अजी जनाब ! आप भी क्या बातें करते हैं ? मैं आपकी शान में ऐसी गुस्ताख़ी कर सकता हूँ ? मेरा मतलब यह था..."

हम—"कि इनसे 'कहाँ' न पूछा तो प्रलय हो जाएगी। ज़रा सोचिए, आप से कितनी बार हमने निवेदन किया है कि हमें इस 'कहाँ' से डर लगता है। मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता। आज ही साइकिल चलाना

सीखने जा रहे थे। यह देखिए, पुराने कपड़े और ज़म्बक का डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकिल। लेकिन इस 'कहाँ' ने आज का दिन भी खराब कर दिया। आपने तो मुसकरा कर पूछ लिया—'कहाँ'; हमारा दो रुपये का नुक़सान हो गया।"

उधर उस्ताद साहब ने साइकिल की घण्टी बजा कर हमें अपने पास बुलाया और बोले—"मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ। आप ज़रा साइकिल को थामिए।"

लाला साहब ने जब यह अवसर पाया तो प्राण ले कर भाग निकले; वरना हम उनसे उस दिन कागज़ लिखा लेते कि अब फिर किसी से 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

४

उस्ताद साहब लस्सी पीने लगे तब हमने साइकिल के पुर्ज़ों की ऊपर-नीचे से परीक्षा शुरू कर दी और लालाजी से जो बद-मज़गी हो गई थी उसे मिटाने के लिए मुँह में गुनगुनाने लगे।

फिर कुछ जी में आया तब उसका हैंडल पकड़ कर ज़रा चलने लगे। मगर दो ही क़दम गये होंगे कि ऐसा मालूम हुआ; जैसे साइकिल हमारे सीने पर चढ़ी आती है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि यह सब लालाजी के 'कहाँ' का प्रभाव है।

इस समय हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न था कि क्या

करना चाहिये? युद्ध क्षेत्र में डटे रहें या हट जाएँ? सोच विचार के बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहे का घोड़ा और फिर लालाजी का "कहाँ" इसके साथ! इसके सामने हम क्या चीज़ हैं? बड़े-बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। इसलिए हमने साइकिल छोड़ दी और भगोड़े सिपाही बन कर मुड़ गए। पर दूसरे ही क्षण साइकिल अपने पूरे ज़ोर से हमारे पाँव पर गिर गई और हमारी रामदुहाई बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँजने लगी। उस्तादजी लस्सी छोड़ कर दौड़े आये और दयावान लोग भी जमा हो गए। सबने मिल-मिला कर हमारा पाँव साइकिल से निकाला भगवान् के एक भक्त ने ज़म्बक का डिब्बा भी उठा कर हमारे हाथ में दे दिया। दूसरे ने हमारी बगलों में हाथ डाल कर हमें सँभाला और सहानुभूति से पूछा—"चोट तो नहीं आई? ज़रा दो चार क़दम चलिए। नहीं तो लहू जम जाएगा।"

इस तरह दूसरे दिन हम और हमारी साइकिल अपने घर से थोड़ी दूर पर ज़ख्मी हो गये। हम लँगड़ाते हुए घर लौट आये; साइकिल ठोक पीट कर ठीक करने के लिए मिस्त्री की दुकान पर भेज दी।

मगर हमारे वीर हृदय का साहस और धीरज देखिये—अब भी मैदान में डटे रहे। कई बार गिरे, कई बार शहीद हुए। घुटने तुड़वाये, कपड़े फड़वाये, पर क्या मज़ाल जो जी छूट जाय। आठ-नौ दिन में साइकिल चलाना सीख गये थे। लेकिन

अभी तक उस पर चढ़ना नहीं आता था। कोई परोपकारी पुरुष सहारा दे कर चढ़ा देता तो फिर लिये जाते थे। हमारे आनन्द की कोई सीमा न थी। सोचते थे, मार लिया मैदान हमने! दो चार दिन में पूरे मास्टर बन जाएँगे, इसके बाद प्रोफेसर और इसके बाद प्रिंसिपल—फिर ट्रेनिंग कालेज, और तीन चार सौ रुपये मासिक। तिवारीजी देखेंगे और ईर्ष्या से जलेंगे।

उस दिन उस्ताद ने हमें साइकिल पर चढ़ा दिया और सड़क पर छोड़ दिया कि ले जाओ अब तुम सीख गये।

अब हम साइकिल चला रहे थे और दिल ही दिल फूले न समाते थे। मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गज के फासिले पर भी होता तो हम गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब! ज़रा बाईं तरफ हट जाइए। दूर फासिले पर कोई गाड़ी दिखाई देती तो हमारे प्राण सूख जाते। उस समय हमारे मन की जो दशा होती उसे परमेश्वर ही जानता है। जब गाड़ी निकल जाती तब कहीं जा कर हमारी जान में जान आती।

सहसा सामने से तिवारीजी आते दिखाई दिये। हमने उन्हें भी दूर से ही अल्टीमेटम दे दिया कि तिवारीजी, बाईं तरफ हो जाओ वरना साइकिल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे। तुमसे बड़ा मूज़ी और कौन मिलेगा?

तिवारीजी ने अपनी छोटी-छोटी आँखों से हमारी तरफ

देखा और मुसकरा कर कहा—"ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।"

हमने एक बार हैंडल की तरफ दूसरी बार तिवारीजी की तरफ देख कर जवाब दिया—"इस समय कैसे बात सुन सकते हैं? देखते नहीं हो, साइकिल पर सवार हैं।"

तिवारीजी—"तो क्या जो साइकिल चलाते हैं वे किसी की बात नहीं सुनते हैं? बड़ी ज़रूरी बात है, ज़रा उतर आओ।"

हमने लड़खड़ाते हुए साइकिल को सँभालते हुए जवाब दिया—"उतर आयें तो फिर चढ़ाएगा कौन? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा।"

तिवारीजी चिल्लाते ही रह गये, हम आगे निकल गये।

इतने में सामने से एक ताँगा आता नज़र पड़ा। हमने उसे भी दूर से डाँट दिया—"बाईं तरफ भाई। अभी नये चलानेवाले हैं।"

ताँगा बाईं तरफ हो गया। हम अपने रास्ते चले जा रहे थे। एकाएक पता नहीं घोड़ा भड़क उठा या ताँगेवाले को शरारत सूझी, जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया। हमारे हाथ पाँव फूल गये। ज़रा सा हैंडल घुमा देते तो हम दूसरी तरफ निकल जाते। मगर बुरा समय आता है तब बुद्धि पहले भ्रष्ट हो जाती है। उस समय हमें ख्याल ही न आया कि हैंडल घुमाया भी जा सकता है। फिर क्या था हम और हमारी साइकिल दोनों ही ताँगे के नीचे आ गये और हम बेहोश हो गये।

जब हम होश में आये तब हम अपने घर में थे और हमारी देह पर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं। हमें होश में देख कर श्रीमतीजी ने कहा—"क्यों? अब क्या हाल है? मैं कहती न थी, साइकिल चलाना न सीखो। उस समय तो किसी की सुनते ही न थे।"

हमने सोचा; लाओ सारा इलज़ाम तिवारीजी पर लगा दें और आप साफ़ बच जायें। बोले—"यह सब तिवारीजी की शरारत है।"

श्रीमतीजी ने मुसकरा कर जवाब दिया—"यह तो तुम उसको चकमा दो जो कुछ जानता न हो। उस ताँगे पर मैं ही तो बच्चों को ले कर घूमने निकली थी कि चलो सैर भी कर आयेंगे और तुम्हें साइकिल चलाते भी देख आयेंगे।"

मैंने निरुत्तर हो कर आँखें बन्द कर लीं।

उस दिन के बाद फिर कभी हमने साइकिल को हाथ नहीं लगाया।

भूखा रोज़ेदार

उसके नाम के आगे न तो मौलवी, मौलाना, शेख या सैय्यद लगाया जाता था और न उसके नाम के पीछे खान, अली या साहब।

उसका नाम था 'मेहर'। हाँ केवल मेहर, मेहरअली भी नहीं। फिर उसके इस छोटे-से नाम के लेने वाले कलकत्ता नगर में अँगुलियों पर गिने जा सकते थे, और एक बार चारों अँगुलियों पर चक्कर मार लेने के बाद अँगूठे महाशय को दुबारा घूमने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ती थी। पाँच बरस का बालक हो या अस्सी साल का बूढ़ा, सब उसे इसी नाम से पुकारते थे। मेहर को अपने इस एकाकी और दिगम्बर नाम से न तो घृणा थी और न कोई खास दिलचस्पी !

मेहर कहाँ का रहनेवाला था, उसका घर कहाँ है, किसी को मालूम नहीं; आज तक किसी को मालूम करने की ज़रूरत ही नहीं हुई। एक दिन वह घूमते फिरते कहीं से कलकत्ते के लम्बे चौड़े मछवा बाजार में आ निकला और वहीं दस रुपये मासिक किराये पर एक छोटा-सा बरामदा ले कर रहने लगा। आजकल समाज में जिन लोगों को बड़ा माना जाता है उनके बड़प्पन के माप–दण्ड और सौ वर्ष पहिले के बड़प्पन के माप दण्ड में ज़मीन-आसमान का अन्तर आ गया है। पुराने ज़माने

का बड़प्पन अपनी सन्तान में लज्जा नज़ाकत और मुहब्बत छोड़ कर दुनिया से विदा हो गया। पूर्व परम्परा के ऐसे गुण मेहर में भी दिखाई देते थे।

कलकत्ता आने के बाद कइयों की खुशामद के फल स्वरूप उसे एक जगह बच्चों को पढ़ाने का ट्यूशन मिला। कहने को ट्यूशन था, वैसे एक छोटी-मोटी पाठशाला ही थी। करीब एक दर्जन लड़के लड़कियों को पढ़ाना पड़ता था। मेहर के पहुँचते ही सारे बच्चे उसे घेर लेते और प्रत्येक लड़का पहिले पढ़ने की और पढ़ कर राजा बनने की फिक्र में रहता। एक कहता पहिले मुझे पढ़ाओ और दूसरा कहता मुझे। मास्टर एक और विद्यार्थी बारह। जिस लड़के को पहिले नहीं पढ़ाया, वही रोता हुआ पहुँचा अम्माँ के पास। बात यही थी कि उसने जो कुछ पढ़ा था वह पढ़ाने के उद्देश्य से नहीं पढ़ा था। पढ़ते समय उसकी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। किन्तु जिस तरह "येषां कापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः"—जिसकी मुक्ति कहीं न हो उसकी मुक्ति काशीजी में हो जाती है, उसी तरह जिसे कोई काम नहीं मिलता वह अध्यापक बनने का सौभाग्य प्राप्त करता है। बेचारा मेहर भी विवश हो कर उसी पद पर आसीन हुआ।

इस ट्यूशन के पीछे उसे बहुत परेशानी उठानी पड़ी थी। सुबह पाँच बजते ही उठना पड़ता, उठते ही हाथ मुँह धो कर चलने की चिन्ता होती। उसका ट्यूशन था बालीगंज-नन्दन-वन में जल्दी-जल्दी डग मारने पर भी साढ़े छः, पौने सात तक

वहाँ पहुँचता। जिस दिन आँखें दस पन्द्रह मिनट देर से खुलतीं उसी दिन आफ़त आ जाती। विद्यार्थियों में से तीन चार लड़के स्कूल को जाते थे। दस पन्द्रह मिनट की देरी से एक न एक पढ़ने से रह जाता। अन्दर से कर्कश ध्वनि सुनाई देती हिन्दुस्तानी लोग टाइम के पाबन्द नहीं होते। इन्हें भला दस-पन्द्रह मिनट की क़ीमत क्या मालूम।" कहना न होगा जिसका यह स्वर था वह योरप या अमेरिका का जीव न हो कर हिन्दुस्तान का ही जन्तु था।

प्रायः ऐसी ग़लती हो ही जाती थी। मेहर को इसके लिये बार-बार माफी माँगनी पड़ती, प्रतिज्ञा करता कल से ऐसा न करूँगा। किन्तु जीभ के इतना आश्वासन देने पर भी आँखें, जब मौक़ा लगता, प्रतिज्ञा भङ्ग कर देतीं।

कभी बच्चे पूछ लेते मास्टर साहब, आपको आने में क्यों देर हो गई है?

मास्टर साहब का एक ही उत्तर था 'क्या करूँ, पैदल आना पड़ता है। देर हो ही जाती है।'

लड़के आश्चर्य से दूसरा प्रश्न करते 'मास्टर साहब' इतनी दूर पैदल किस तरह आते हो? आपके पाँव नहीं दुखते?'

मेहर रुँधे कण्ठ से उत्तर देता—'जिस समाज में मैं पैदा हुआ हूँ उसमें किसी सवारी पर सवार होना गुनाह है।'

बार-बार यही उत्तर सुन कर बच्चों के मन में मास्टर साहब के इस विचित्र समाज के बारे में बहुत से सवाल पैदा

होते, किन्तु मास्टर साहब ज्यादा बात-चीत नहीं कर सकते थे। कुछ अधिक वार्तालाप हुआ कि भीतर से नारी की चिरपरिचित ध्वनि सुनाई देती, 'मास्टर साहब, यह पढ़ाई हो रही है या गप्पें उड़ रही हैं? इस तरह बच्चे क्या ख़ाक पढ़ेंगे?'

मेहर को यहाँ पूरे छः घण्टे देने पड़ते थे। एक तरह से वे लड़कों की पढ़ाई पर निर्भर न रह कर घड़ी की सुइयों के आश्रित थे। किसी दिन पाँच मिनट पहले चले जाते तो दूसरे दिन जवाब तलब किया जाता।

आये दिन अपमान की घूँट पीनी पड़ती थी। मास्टर-साहब इसके अभ्यस्त हो गये। प्रति दिन अपने अध्यापक का अपमान देख कर विद्यार्थी गुरु का कितना आदर करते थे, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

मेहर बच्चों को पढ़ा कर दो अढ़ाई तक घर पहुँचता, वहाँ चूल्हे से सर पच्ची करनी पड़ती, तब पेट में रोटी पड़ती। महीना खत्म होने पर वेतन मिलता। दस रुपये मकान किराया देना पड़ता, पन्द्रह रुपये में महीने भर गुज़ारा करना पड़ता।

× × ×

जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने युद्ध के नाम पर अपरिवर्त्तनशील काल-चक्र को भी एक घण्टा पहले चलने के लिये बाध्य कर दिया तो मेहर की मुसीबतों का ठिकाना न रहा। इधर दिन पर दिन बढ़ती हुई महँगाई और अनाज की दुष्प्राप्यता से जीवन-निर्वाह कठिन होता गया। समय पर न कोयला मिलता और

न दूसरे पदार्थ, यदि अन्न लेने जाओ तो ट्यूशन से हाथ धोओ और काम पर गये तो चूल्हा जलना मुश्किल।

कपड़े का तो पूछना ही क्या ? मेहर के पास ले दे कर एक कमीज़ साबित बची थी। उसीको धो-सुखा कर पढ़ाने जाता। जिस दिन कमीज़ न धुलती, लड़के कोरस में पुकारते 'मास्टर साहब गन्दे। हम आपके पास न बैठेंगे। मेहर मन मसोस कर रह जाता।'

नये समय के कारण अब नित्य देर होने लगी। इधर खाद्यान्न की दुष्प्राप्यता के कारण उसे अधिकतर रोज़ा रखने का सवाब मिलने लगा। ट्यूशनवाले चेतावनी दे दे कर हार गये और इस खोज में थे कि कोई दूसरा मास्टर मिले तो जवाब दे दिया जाय। एक दिन मेहर को रुख़सत मिल गई। जिस दिन इस नौकरी से छुट्टी मिली उस दिन उसे अपने पिता की मृत्यु से भी अधिक वेदना हुई। दुःख इसलिए नहीं कि उस नौकरी से कोई सुख मिलता था और वह अब छिन गया था, बल्कि इसलिए कि अब जिन्दगी का आधार वह दुःख भी नहीं रह गया था।

बीस-पच्चीस दिन तक काम की तलाश में वह इधर उधर चक्कर काटता रहा, पर कोई काम नहीं मिला। मेहर ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था, यह बात नहीं। उसने काफी शिक्षा पाई थी। हज़ारों रुपये खर्च करने पर यूनिवर्सिटी से दो तीन कागज के टुकड़े मिले थे; जिन्हें मेहर के पिता ने बड़े चाव से फ्रेम में चढ़वाया था। उसके पास वे फ्रेम अब भी थे; लेकिन उन पर

अब काफ़ी धूल जम गई थी। वह ज़माना गया जब इन कागज़ के टुकड़ों को दिखाने भर से सौ-पचास की नौकरी बड़ी आसानी से मिल जाती थी। आजकल पन्द्रह बीस की चपरास-गिरी के लिए भी बहुत-सी चीज़ों की आवश्यकता होती है। मेहर उन फ्रेमों से लापरवाह रहा है और अब भी है। भूले भटके भी उन पर नजर न जाती थी। आज अकस्मात् उन पर इसकी दृष्टि पड़ गई। दूसरे ही क्षण सारे फ्रेम निर्ममता से पटक दिये गये। काँच दालान में फैल गया। कागज़ के टुकड़े टुकड़े कर दिए। कागज़ के उन फटे टुकड़ों को पाँव से रौंद कर उसने सन्तोष की साँस ली।

आज महीना पूरा हो गया। मकान मालिक को कल किराया देना पड़ेगा। मकानदार से कह दिया जाय ठहर कर दूँगा। इससे वह क्या समझेगा? और कह ही देने से क्या वह मान जाएगा? बिना किराया दिए ही वह क्यों रहने देगा? यदि वह अपने किराएदारों को दो-चार महीने के लिए भी बिना किराया दिये रहने देता तो मकानदार कैसे बनता? तब क्या यह जगह छोड़ देनी चाहिए? चिन्ता में रात बीत गई।

× × ×

जिस दिन उसने घर छोड़ा, रमज़ान का महीना शुरू हुआ। मेहर के लिए तो शाबान भी रमज़ान था। दिन भर वह इधर उधर भटकता रहा। जो थोड़ा बहुत सामान था वह उसी कोठरी में छोड़ आया था। सन्ध्या समय एक जगह बैठ कर

नमाज़ पढ़ी और नल का पानी पी कर रोज़ा खोला। फुटपाथ पर जैसे तैसे रात बिताई। सुबह तीन-चार बजे से ही कुछ मुसलमान युवक 'सहरी करो', 'होशियार हो जाओ' 'सहरी करो' चिल्लाते हुए गली गली घूमने लगे। ऊँचे ऊँचे घरों से टकरा कर इन शब्दों की प्रतिध्वनि लौट रही थी। मेहर होशियार था, किन्तु सहरी के लिए उसके पास कुछ भी न था। वह उठा। उसने निकट के नल से हाथ पाँव धोये; ख़ुदा का नाम लिया। पेट भर पानी पिया। दिन निकला और इसी तरह बीत गया। मेहर ने फिर पानी से रोज़ा तोड़ा। धीरे धीरे रात के अँधेरे ने शहर को ढँक लिया। उसके पाँवों ने जवाब दे दिया। कहीं जाना चाहता था। किन्तु जा न सका। सड़क पर इक्के-दुक्के आदमी चल रहे थे। मेहर फुटपाथ के पास बैठ गया! वहाँ दस पन्द्रह भिखारी पहले से थे। कुछ लेटे हुए और कुछ बैठे हुए। कुछ भिखारी खिचड़ी खा रहे थे। जब खिचड़ी समाप्त हो गई तो वे पत्ते चाटने लगे और उन्हीं को चबा कर निगल गये।

मेहर जहाँ जा कर बैठा, एक अधेड़ आयु की स्त्री अपने बच्चों को खिचड़ी चटा रही थी। मेहर के बैठते ही चिल्लाई, चल हट यहाँ से। क्या मेरे बच्चों को नज़र लगाएगा? फिर इस स्त्री ने मुँह मोड़ लिया। बच्चों को अपने आञ्चल की छाया में ले लिया। सम्भवतः 'इन्द्राणी' ने 'जयन्त' को अमृत चटाते समय भी असुर दृष्टि से इस तरह न बचाया होगा। एक साधारण भिखारिन से तिरस्कृत हो कर मेहर कुछ बोला

नहीं। चुप रहा।

चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था, घना अंधेरा। जिस नगर में रात दिन से अधिक प्रकाशपूर्ण रहती थी, वहीं अब सन्ध्या से अंधकार का राज्य रहता है। चारों ओर सुनसान था। आकाश नीरव। किन्तु भिखारियों के इस घेरे में नींद ने प्रवेश नहीं किया। एक ओर कोई बच्चा बड़ी देर से चिल्ला रहा था। माँ अपनी सूखी छातियों को, चमड़े के टुकड़ों को, बार-बार बच्चे के मुँह में ठूँस रही थी और बच्चा उन्हें बाहर निकाल कर किलकारी भर रहा था। अन्त में क्रोध से बालक ने छातियों को जोर से चबाया। माँ के मुँह से दबी चीख निकली। उसने बच्चे को ज़ोर-ज़ोर से मारना शुरू किया। मार के साथ बच्चे का रोना भी बढ़ा। बच्चे की आवाज़ क्षीण हो गई। वह सिसकियाँ भरने लगा। अन्त में चुप हो गया।

निकट ही नौ-दस बरस की बच्ची थी, पास ही उसकी माँ भी। बच्ची रह-रह कर चिल्ला रही थी। माँ रोने का कारण पूछ रही थी। बच्ची के मुँह से बोल नहीं निकल रहा था। माँ के झुँझलाने पर लड़की फूट-फूट कर रोने लगी। बोली— "मैं हाथ में खिचड़ी लिए आ रही थी। जैसे ही चौराहे पर पहुँची, तीन-चार कुत्ते मेरी तरफ दौड़ पड़े। मैं जैसे-जैसे भागी कुत्ते भी उसी तेज़ी के साथ दौड़े। मैं एक जगह ठोकर खा कर गिर गई। एक कुत्ते ने आते ही खिचड़ी पर झपट्टा मारा और दूसरा मुझ पर झपटा। तीन-चार जगह पर उन्होंने मुझको काट

खाया। कुछ लोगों ने मार-मार कर उन कुत्तों से बचाया। इन घावों में बहुत दर्द है माँ !" कह कर लड़की रोने लगी और पास ही उसकी माँ भी।

जिन बच्चों को आज खाना नहीं मिला था वे रह-रह कर रोते थे और सिसकियाँ भर रहे थे। बीच-बीच में चिल्ला उठते —"अम्माँ बड़ी ज़ोर से भूख लगी है, री ! कुछ खिला दे।" और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगते। माताएँ भी बच्चों के साथ रोने लगतीं। कभी झिड़क कर और कभी पीट कर बच्चों का मुँह बन्द कराना चाहतीं।

दूर की घड़ी से दो बजने की ध्वनि आई। यहाँ नींद किसे आती थी। सब के पेटों में आग धधक रही थी। कुछ धीरे-धीरे कराह रहे थे। रह-रह कर करवटें ली जा रही थीं। इसी समय आकाश से मूसलधार पानी पड़ने लगा। लोग गिरते-पड़ते छाया की खोज में चले। पाँच-छः स्त्रियाँ उठ नहीं सकती थीं। विवश, वहीं भीगती पड़ी रहीं। मेहर उठ कर एक दूकान की छाया में पड़ गया। अभी दस पाँच मिनट भी नहीं बीते थे कि वहाँ छाया की तरह लड़खड़ाती एक स्त्री आई और धड़ाम से गिर गई। मेहर उसके पास पहुँचा। उसने देखा—एक छोटा-सा बालक उस स्त्री के स्तन को मुँह में दबाये चिपटा है। मेहर ने बड़ी कठिनाई से बच्चे के मुँह से स्तन छुड़ाया। बच्चे को हटाते ही वह स्त्री उठ बैठी और बोली—"अरे मेरे लाल को कौन छीनता है ?" और वह फिर धड़ाम से गिर गई। मेहर ने

उस बच्चे के पेट पर हाथ रख कर देखा, पेट का चमड़ा चिपक गया था। बच्चा पन्द्रह दिन से अधिक का नहीं था! किन्तु उसमें बाल-सुलभ कोमलता नाम को भी नहीं थी। वह पत्थर से भी कठोर था। मेहर ने बच्चे की नाक पर हाथ रख कर देखा, बच्चा संसार से विदा ले चुका था।

स्त्री नीचे पड़ी भीग रही थी। पानी मूसलाधार बरस रहा था। मेहर ने उस स्त्री को उठा कर छाया में सुलाया। स्वयं भीगने लगा। दूकान में से निकलनेवाले क्षीण प्रकाश में उसने देखा वह स्त्री हड्डी का ढाँचा भर शेष रह गई है, लेकिन उसकी आँखें, नाक आदि अंग सुन्दर थे। उसने सोचा स्त्री भिखारिन नहीं है। इसी समय स्त्री का शरीर काँपा। मेहर भीगता रहा, निश्चल पत्थर की तरह।

दिन निकला। नित्य की तरह लोग सड़क पर चलने फिरने लगे। मेहर की नज़र रातवाली जगह पर गई। पानी से अकड़ी पाँच-छः औरतों की लाशें पड़ी थीं। थोड़ी देर में कुछ लोग आये और उन लाशों को ठेले में डाल कर चलते बने। उन लोगों के मुँह पर न घृणा थी और न विषाद, मानों इस कार्य में बचपन से अभ्यस्त हों। जब वे लोग मेहर की पासवाली स्त्री को घसीटते हुए ठेले के पास ले गये तब मेहर की आँखों से बरबस दो बूँदें टपक पड़ीं।

मेहर का शरीर गिरा पड़ता था। वह खड़ा नहीं हो पाता था। उसके रोम रोम में चारों ओर बिच्छुओं के दंशन की पीड़ा

थी। उसका शरीर जल रहा था। दस ग्यारह बजे वह पास के पेड़ की छाया में पड़ रहा। एकाएक उसके मन में आया जामा मस्जिद पहुँचना चाहिये। वह बारह बजने के बाद रह न सका। चल पड़ा। पैर लड़खड़ा रहे थे। पर वह आगे ही क़दम बढ़ाता गया। बिजली के खम्भों का सहारा ले-ले कर, ठहर ठहर कर, हिम्मत बाँध कर क़दम बढ़ाता। कदम कदम पर हाँफने लगता, फिर आगे ही क़दम रखता। कई जगह बैठा, उठा, और चला। प्यास से मुँह सूख रहा था। जीभ पर काँटे पड़ गये। प्राण ओठों तक आ रहे थे। मस्तक चकरा रहा था। इसी समय उसकी नज़र एक नल पर गई। नल खुला था। उसमें से धग्-धग् करता पानी निकल रहा था। मेहर के पैर एकाएक नल की तरफ़ बढ़े। वह दूसरे क्षण नल के पास था। उसके हाथ आगे बढ़े। पानी भरी अँजली मुँह की ओर चली। एकाएक हाथ काँपा और अँजली का पानी ज़मीन पर ढुलक गया। मेहर बड़बड़ाया "नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं बीस बरस से रोज़दार हूँ। लगातार बीस बरस से, क्या मैं आज अपना व्रत तोड़ दूँगा ? नहीं, यह नहीं हो सकता। एक घूँट पानी के लिए ? नहीं, नहीं, अमृत के लिए भी नहीं।" वह सड़क की ओर घूम गया। उसका माथा घूम रहा था। आकाश चूमनेवाले सात-सात मंज़िल के मकान घूम रहे थे। आकाश घूम रहा था। ज़मीन सरक रही थी। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। उसे पता नहीं था, वह कहाँ है, कहाँ जा रहा है ? वह चला जा रहा था।

जुमा मसज़िद के पास पहुँचते पहुँचते पाँच बज गये। जो मुस्लिम होटलें दिन भर सुनसान पड़ी थीं, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं, रोज़ेदार मुसलमान आ आ कर कुर्सियों पर जमने लगे। रेडियो बजने लगा। चहल-पहल हुई। छौंक की सुगन्ध और मछली तलने की दुर्गन्ध आ रही थी। होटलों के बाहर बड़े-बड़े साइन बोर्डों पर लिखा था, रमज़ान के लिए स्पेशल 'फ़ालूदा' और 'हरीस'। लेकिन यह स्पेशल चीज़ें उन्हीं के लिये थीं, जिनके पास रमज़ान के लिए स्पेशल पैसे भी हों। गिरता, पड़ता, लेटता, उठता, बैठता आखिर मेहर जुमा मसजिद पहुँचा। अब उसके पावों ने बिलकुल जवाब दे दिया था। बैठ बैठ कर लेट लेट कर उसने मसजिद की सीढ़ियाँ पार कीं और ऊपर जा कर वह एक कोने में पड़ गया। धीरे धीरे रोज़ेदार मुसलमानों का मसजिद में जमघट लगने लगा। आनेवालों में बच्चे थे, जवान थे और बूढ़े भी थे। सब अपने साथ तोशेदान ला रहे थे। किसी के लिए 'ग्राँड होटल' से खाना आ रहा था और किसी के लिए 'रायल होटल' से। लोगों ने आते ही अपने अपने दस्तरखान बिछाये और उन पर वे अपना अपना खाना जमा कर बैठ गये। रोज़ेदारों की निगाह कभी घड़ी पर जाती कभी खाने पर। घड़ी की सुई के साथ-साथ उनका मन भी भोजन के लिये घूम रहा था। बच्चे उछल कूद मचा रहे थे, जवान गपशप मार रहे थे और बूढ़े अपनी अपनी मालाएँ निकाल कर फेर रहे थे। मेहर एक कोने में पड़ा बड़बड़ा रहा

था। उसकी तरफ नज़र डालने को किसे फ़ुर्सत थी। एक तरफ़ फटे-पुराने, मैले-कुचैले कपड़े पहिन ग़रीब रोज़ेदार बैठे थे।

इसी बीच कुछ लोग अपने नौकरों पर थाल रखाये वहाँ पहुँचे। फिर क्या था, चारों तरफ से रोज़ेदारों ने उनको घेर लिया। धक्कमधक्का होने लगा। प्रत्येक आदमी इस कोशिश में था कि भोजन पहले उसे मिले। मेहर की आँखें खुलीं। वह उठा। उसके पैर भी लड़खड़ाते हुए उसी तरफ़ चल पड़े। उसने भी आगे बढ़ कर हाथ पसारा। किन्तु उसका हाथ काँप गया। मुँह लज्जा से झुक गया, वह पीछे हटा।

मेहर गिरता-पड़ता पानी के हौज़ की तरफ़ बढ़ा। हौज़ के किनारे पहुँच वह पानी के लिये ज्यों ही झुका, उसके पाँव लरज गए। वह धड़ाम से हौज़ में जा गिरा। आसपास के कुछ आदमी हौज़ पर पहुँचे। एक ने हौज़ में कूद कर मेहर को बाहर निकाला। दस-पन्द्रह मिनट के बाद मेहर के हाथों में कम्पन हुआ। धीरे धीरे हाथ गाल के पास गये। उसने हाथ से पहले बाँया गाल छुआ और बाद में दाहिना। उसकी यह तोबा गुनाहों के लिए थी या हिन्दुस्तान जैसे बदनसीब देश में पैदा होने के लिए; अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कुछ क्षण बाद वह छटपटाया और सदा के लिए शान्त हो गया। लोगों ने कहा—"अरे, कोई भूखा था बेचारा! मर गया। पुलिस को इत्तिला दे दो।"

थोड़ी देर बाद उठानेवाले आये और उठा कर ले गये।

लोग अपना भोजन करने लगे। कोई अपने साग की तारीफ़ कर रहा था और कोई पकौड़ियों की। मानो वहाँ कुछ हुआ ही नहीं !

—श्रीराम शर्मा

तहसीलदार

यह किस्सा आज से चालीस वर्ष पूर्व का है। उस समय के लोग निराले थे। गरीबों और अमीरों के कपड़ों में, रहन-सहन में, खाने-पीने में और बोल-चाल में बहुत अन्तर था; किन्तु एक दूसरे के लिए उन दिनों सहानुभूति रहा करती थी। शिक्षितों और अशिक्षितों में उस समय वही अन्तर था जो कि पहाड़ों की ऊँची चोटियों और नीचे की समतल भूमि में हो सकता है। अशिक्षित बहुत थे, शिक्षित बहुत कम थे, किन्तु शिक्षित अशिक्षितों की उपेक्षा नहीं किया करते थे। उन दिनों राज्याधिकारी और प्रजा में सेव्य-सेवक का सम्बन्ध था। अधिकारी स्वतः को स्वर्ग से उतरे हुए इन्द्र के प्रतिनिधि समझते थे और प्रजा भी उन्हें देवता मान कर पूजती थी। परन्तु कभी दोनों में ईर्ष्या, द्वेष या घृणा की भावना का आविर्भाव नहीं होता था, कारण उस समय अच्छे-बुरे; पाप-पुण्य, तथा कर्तव्याकर्तव्य की समयानुसार कुछ भावनाएँ थीं और लोग भी उसी के अनुसार आचरण करते थे। सच पूछा जाए तो भारत-वर्ष में वह समय पुरानी और नई सभ्यताओं के लिए संध्या का समय था। रानी विक्टोरिया का शासनकाल समाप्त हो चुका था। किंग जार्ज अभी सिंहासन पर आरूढ़ नहीं हुए थे। ये दिन

वे थे जब कुछ वर्षों के लिए भारत के सम्राट् किंग एडवर्ड बने थे। नई सभ्यता का प्रादुर्भाव हो रहा था और पुरानी सभ्यता उसके सम्मुख घुटने टेकती-सी नज़र आ रही थी। विलायत से पढ़ कर बहुत से बैरिस्टर, आई. सी. एस. और दूसरे विद्वान् नये-नये विचारों को प्रथम बार भारत में फैला रहे थे जिससे भारतीयों के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन प्रारम्भ हो चुका था। इसका एक उदाहरण आज से चालीस वर्ष पूर्व मनमाड से हैदराबाद जाती हुई गाड़ी के एक फर्स्ट क्लास डिब्बे में उग्ररूप में दिखाई दे रहा था।

गाड़ी मिट्टूगुडा स्टेशन पर खड़ी थी। फर्स्ट क्लास के एक डिब्बे में एक नवयुवक बैरिस्टर एक अंग्रेजी मासिक हाथ में लिए कभी पढ़ता था तो कभी उसी से पंखे का भी काम लेता था। मुख में एक लम्बी चुरुट थी जिसकी ठहर ठहर कर निकलती हुई धुएँ की धारा उसके आन्तरिक उतावलेपन का प्रदर्शन कर रही थी। वह बार-बार अपनी वास्कट की जेब से घड़ी निकाल कर देखता और फिर घड़ी जेब में रख लेता था। आखिरकार वह अपने डिब्बे से बाहिर निकला और छड़ी का आसरा-सा लेता हुआ स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँचा। वहाँ गाड़ी का गार्ड भी बैठा हुआ था।

"क्या कारण है, गाड़ी पन्द्रह मिनट लेट है और आप उसे छोड़ने का विचार करते भी प्रतीत नहीं होते?" बैरिस्टर साहब ने गार्ड से पूछा।

गार्ड ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल स्टेशन-मास्टर की तरफ़ देख कर उसने इस भाव को प्रकट किया कि गाड़ी इनकी आज्ञा के बिना आगे नहीं बढ़ सकती। अलबत्ता स्टेशन-मास्टर ने, जो कि गाड़ी खड़ा करने का महत्व पूर्णतया जानता था, बैरिस्टर साहब को समझाने का प्रयत्न किया।

"अभी अभी सूचना प्राप्त हुई है कि मिट्टूगुडा के तहसीलदार हैदराबाद जानेवाले हैं, उनकी प्रतीक्षा है। उनके आने तक गाड़ी खड़ी रहेगी।"

"व्हॉट नॉन सेन्स!" बैरिस्टर साहब ने गरजते हुए कहा, "आपको चाहिए कि आप गाड़ी समय पर छोड़ दें। तहसीलदार तो क्या उससे किसी बड़े अधिकारी के लिए भी ट्रेन लेट नहीं की जा सकती। आप नहीं समझते कि गाड़ी लेट होने से दूसरों को किस तरह तकलीफ़ होती है। हमें हैदराबाद जल्दी पहुँचना है। आप गाड़ी शीघ्र छोड़िये।"

उस समय के कर्मचारी समय के महत्व से अनभिज्ञ थे। वे अंग्रेजी पोशाक से घबराते थे, किन्तु तहसीलदार के लिबास से आतंकित होते थे। नासमझी, घबराहट और आतंक की विविध भावनाओं से विक्षुब्ध स्टेशन-मास्टर सिवाय इसके कुछ उत्तर न दे सका कि "अभी आते ही होंगे। यह लीजिये आ ही गये। उनके म्याने के धीवरों की आवाज़ आ रही है। कुछ ही देर में आ जाएँगे। आप अपने डिब्बे में बैठ जाइये। अभी गाड़ी छुड़वा देता हूँ।"

यह वाद-विवाद चल ही रहा था कि छः धीवरों के कंधों पर लदा हुआ तहसीलदार का स्याना सीधा उस फर्स्ट क्लास के डिब्बे के सामने पहुँच गया, जिसमें से अभी अभी बैरिस्टर साहब उतरे थे। उनके पीछे कपड़ों से भरे हुए चार सन्दूक, मोटे मोटे तीन बिछौने, फलों से भरे दो टोकरे, एक तोशादान एक टूँटीदार लोटा, एक मुर्गियों की छाबड़ी और एक हुक्का भी था। यह सारा सामान अन्दर रखा ही जा रहा था कि बैरिस्टर साहब दौड़ते हुए अपने डिब्बे के समीप आ कर हमालों से कहने लगे—

"यह डिब्बा रिज़र्व है। इसमें आप लोग दूसरों का सामान नहीं रख सकते।"

"हमें कुछ मालूम नहीं, सरकार की आज्ञा है। आपकी कोई तकरार हो तो उनसे कहो।" हमालों ने उत्तर देते हुए अपना काम जारी रखा।

"यह क्या बात है!" बैरिस्टर साहब ने तहसीलदार से कहा—"आप देखते हैं कि डिब्बे पर रिज़र्व का लेबल है और फिर भी आप अपना सामान इसमें रखवा रहे हैं। यह बात ठीक नहीं है। आप अभी से दूसरी जगह बैठ जाइये, अन्यथा आपको अगले स्टेशन पर उतरना पड़ेगा।"

"बड़ा आया उतारनेवाला।" तहसीलदार ने कहा—"कहता है डिब्बा रिज़र्व है, होगा किसी ऐरे-गैरे के मुकाबले में, क्या तहसीलदार के मुकाबले में भी डिब्बा रिज़र्व करने का किसी को

अधिकार है ?" फिर हमालों को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—"चलो जल्दी करो, रखो सब सामान, गाड़ी को देर हो रही है।"

"मैं कहता हूँ आपको इस डिब्बे में बैठने का अधिकार नहीं है।" बैरिस्टर साहब ने बड़े आवेशपूर्ण शब्दों में जताया।

"कौन कहता है कि हमें बैठने का अधिकार नहीं है। जैसे कि हमने टिकट ही नहीं लिया हो।" यह कहते हुए तहसीलदार ने अपनी शेरवानी की जेब से टिकट निकाला और उसको बताते हुए अपना कथन जारी रखा। "यह देखो, हमारे पास भी टिकट है और हमें भी गाड़ी में बैठने का उतना ही अधिकार है जितना तुम्हें है।"

टिकट देखना ही था कि बैरिस्टर साहब का खून खौल उठा। यह टिकट सैकण्ड क्लास का था और तहसीलदार बैठ रहे थे फर्स्ट क्लास में।

धीरे धीरे सारा सामान भरा जा चुका था। तहसीलदार डिब्बे में चढ़ चुके थे। उनके दो चपरासी दोनों दरवाज़ों पर खड़े थे। बैरिस्टर साहब ने उनसे तकरार करना बेसमझी की बात जान कर दूर खड़े हुए स्टेशनमास्टर और गार्ड से ही शिकायत करना उचित समझा। बैरिस्टर ने उन दोनों की तरफ़ रुख किया। दोनों ताड़ गये कि बैरिस्टर साहब उनकी तरफ़ क्यों आ रहे हैं। उनको ज्ञात था कि तहसीलदार का टिकट दूसरे दर्जे का है। साथ ही वे यह भी जानते थे कि न

तो वे बैरिस्टर साहब की माँग पूरी कर सकते हैं और न तह-सीलदार को, जिसके पास दूसरे दर्जे का टिकट है, पहले दर्जे से उतार सकते हैं। अपनी निर्बलता को अनुभव करते हुए दोनों एक दूसरे से अलग हो गये। गार्ड ने गाड़ी के पिछले डिब्बे की तरफ़ रुख किया और स्टेशन मास्टर दौड़ता हुआ इंजिन की तरफ़ चल दिया। जाते जाते बैरिस्टर साहब की तरफ़ मुँह फिराते हुए कहता गया—

"डिब्बे में चढ़िये, गाड़ी चल रही है।"

बैरिस्टर साहब विचार ही कर रहे थे कि किधर जाऊँ—गार्ड की तरफ़ या स्टेशन मास्टर की तरफ़—कि इतने में गार्ड ने सीटी बजा दी और मास्टर ने हरी झण्डी फहरा दी। इंजिन का पोंगा भी ज़ोर से बज उठा। बैरिस्टर साहब के लिए सिवाय इसके कोई चारा नहीं रहा कि वे शीघ्रता से डिब्बे में घुस जाएँ।

डिब्बे में चढ़ने के बाद बैरिस्टर साहब के सम्मुख एक दूसरा प्रश्न उपस्थित हो गया। एक सीट पर तहसीलदार खुद बैठे हुए थे और उनके दोनों ओर दो बड़े-बड़े बिछौने पड़े हुए थे। दूसरी सीट पर चारों सन्दूक थे और उन पर तीसरा बिछौना था। बैरिस्टर साहब के बैठने के लिए कोई स्थान खाली नहीं था। डिब्बे के बीच तहसीलदार के दोनों नौकर बचे हुए सामान को इधर से उधर और उधर से इधर करते हुए गड़बड़ मचा रहे थे। बैरिस्टर साहब ने देखा कि अब तहसीलदार

साहब से डाँट डपट करने का मौक़ा नहीं है। इसलिए वे एक तरफ डिब्बे की दीवार से पीठ लगाये चुरुट का धुआँ खींचते हुए चुपचाप एक योगी की दृष्टि से इस माया जाल को देख रहे थे और सोच रहे थे कि इससे अलिप्त रहने में ही सुख है, इसमें फँसने में दुःख है। बैरिस्टर साहब की इस अवस्था को देख कर तहसीलदार को तरस आया। उसने बड़े ही सौजन्य से कहा—

"मियाँ, खड़े क्यों हो; बैठ जाओ न !" जैसे यह तो डिब्बे का मालिक है और बैरिस्टर साहब पर कृपा दृष्टि कर रहा है।

इतने में तहसीलदार ने देखा कि दूसरी सीट तो सामान से भरी पड़ी है और बैरिस्टर साहब के बैठने के लिए कोई स्थान ही नहीं है। वे तुरन्त अपनी सीट से उठ खड़े हुए और कहने लगे—

"मियाँ ! लो, यहाँ बैठो। मैं दूसरी तरफ़ बैठता हूँ।" इतना कहते हुए उन्होंने अपने नौकरों से बाजू की सीट खाली करने को कहा और बैरिस्टर साहब को दोनों कन्धों से पकड़ कर अपनी सीट पर दबा मारा। यह बात उन दिनों के विनयानुसार थी। सीट खाली हो जाने पर दूसरी तरफ़ वे खुद बैठ गये।

× × ×

गाड़ी तेज़ी के साथ आगे बढ़ रही थी। बैरिस्टर साहब का मुख खिड़की के बाहर था। तहसीलदार सीट के बीचोंबीच

दोनों हाथ सीट की पीठ पर पसारे बैठे हुए थे। अपने साथी यात्री की तरफ देखते हुए वह सोच रहे थे कि इससे क्यों कर बातचीत प्रारंभ की जाए।

"मियाँ! कहाँ से आ रहे हो?" तहसीलदार ने पूछा।

लखनऊ से।" खिड़की से गर्दन घुमा कर बैरिस्टर ने उत्तर दिया और अपना मुख खिड़की के बाहर कर लिया।

"क्या करते हो मियाँ लखनऊ में?" तहसीलदार ने फिर पूछा।

इस समय बैरिस्टर साहब ने अपनी गर्दन नहीं मोड़ी। वे तो पहले प्रश्न पर ही तङ्ग आ गये थे और ऐसे गँवार से, जो बिना पहचानत के बातचीत जारी रखना चाहता हो, बात करना नहीं चाहते थे।

वह तो बड़ा नगर है। ऐतिहासिक नगर है। नवाबों और ज़मींदारों का नगर है। आपकी भी ज़मींदारी होगी, तभी तो सैर के लिए इधर निकले हो?" तहसीलदार ने अपनी बौछार जारी रखी।

न जाने बैरिस्टर साहब को ज़मींदारी का उपपद क्यों अखरा, वे उसको सुन कर चुप न रह सके और कह उठे—

"नहीं।"

तहसीलदार ने देखा किला ढसक रहा है। दो-चार और हल्ले हुए कि इस सूट-बूटवाले व्यक्ति का मुँह निश्चय ही उनकी तरफ फिर जायेगा। वे पुराने ज़माने के व्यक्ति थे और रेल

के डिब्बे में, जब कि उनके साथ कोई दूसरा व्यक्ति बैठा हो, चुपचाप बैठ नहीं सकते थे।

"डाग्दर हो ?" तहसीलदार ने पूछा।

"नहीं।"

"सरकारी ओहदेदार हो ?"

"नहीं।"

"फिर क्या कोई व्यापार-धन्धा करते हो या किसी कम्पनी के एजण्ट हो ?"

"नहीं।" एक ही शब्द में बैरिस्टर साहब ने अपना उत्तर दोहराया।

"अजी, बोलो तो सही; दुनिया में आ कर फिर क्या करते हो ? कहीं कालेज में परफेसर वरफेसर तो नहीं हो, जो छुट्टियों में हैदराबाद की सैर के लिए निकले हो ?"

"नहीं।" फिर वही एक शब्द में उत्तर।

बैरिस्टर साहब सोच रहे थे कि इस बूढ़े को मैं कौन हूँ, क्या करता हूँ, कहाँ रहता हूँ, इससे क्या मतलब। मैं, मैं हूँ। और वह, वह है। भला आदमी चुप क्यों नहीं बैठता, समझ नहीं पाता। परन्तु तहसीलदार थे पुरानी पीढ़ी के। उसकी पीढ़ी के दो व्यक्ति जहाँ बैठे वहीं उनमें आत्मीयता उत्पन्न हो जाती थी। दस ही मिनटों में दोनों एक दूसरे के बाल-बच्चों, चचा, भतीजों और बहिन-भाइयों से परिचित हो जाते थे। कभी कभी तो चार-पाँच पीढ़ी ऊपर निकल गये तो उनके पुराने सम्बन्धी

होने का भी पता लग जाता था। फिर यदि किसी के घर नौजवान छोकरा हो और दूसरे के घर विवाह के योग्य पुत्री हो तो यों ही एक ही बैठक में मंगनी भी हो जाती थी। परन्तु आज तहसीलदार को बड़े ही खूसट से पाला पड़ा था, जो कि 'नहीं' के सिवाय कोई जवाब ही नहीं जानता था। तब तो तहसीलदार ने एक दूसरा पैंतरा सोचा। दिन के बारह बज चुके थे। भोजन का समय हो चुका था। तहसीलदार ने डिब्बे के फर्श पर दो सन्दूकों को जमा कर उस पर दस्तरखान बिछाया और तोशेदान में से एक-एक तश्तरी दस्तरखान पर जमा कर कहा—

"अजी वकील साहब, आइए! बिस्मिल्लाह! खाना हाज़िर है, नोश फरमाइये।"

"वकील साहब!" यह सम्बोधन सुनते ही वैरिस्टर चौंक कर उठ खड़े हुए और बोले—

"आपने कैसे जाना मैं वकील हूँ।"

"अजी मियाँ! जो ज़मींदार नहीं, परफेसर नहीं, ओहदेदार नहीं, डाग्दर नहीं और फिर भी सूट-बूट पहन सकता है तो वह वकील नहीं तो क्या हो सकता है। 'जिसका कोई धन्धा नहीं उसका धंधा वकीली' हमारे यहाँ की कहावत है।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

'हाँ, तो बैठिये; शुरू कीजिए।" तहसीलदार ने आग्रह किया।

दस्तरखान पर दो बड़ी तश्तरियों में पुलाव व कबाब के

ढेर थे। दोनों के बीच एक तश्तरी में रोटियाँ थीं। यह तश्तरी भिन्न-भिन्न सालनों की चार तश्तरियों से घिरी हुई थी। सालनों की तश्तरियों के बीच-बीच कटोरियाँ थीं। दस्तरखान के दो अङ्कोनों पर बादाम और पिस्ते की मिठाई और दूसरे दो कोनों पर खीर से भरे दो प्याले थे। कबाब, पुलाव और सालनों की महक, चटनियों की चहक, वर्कदार मिठाइयों की चमक, घी से चुपड़ी रोटियों की दमक और खीर से भरे कटोरों की लपक ने बैरिस्टर साहब का मन लुभा लिया।

"अच्छा, आपका इतना आग्रह है; तो दो निवाले आपके साथ खा ही लेता हूँ।" बैरिस्टर साहब ने कहा और दस्तर-खान की तरफ़ मुँह करके बैठ गये।

"हाँ! हाँ! मियाँ! ज़रूर खाओ। इससे बढ़ कर किसी पर क्या उपकार हो सकता है कि उसको मेज़मानदारी का मान दिया जाय। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ।" आज से चालीस वर्ष पूर्व बुढ़ापा पाए हुए तहसीलदार ने विनीत भाव से बैरिस्टर से कहा—"लो, यह पुलाव लो; बड़ा मजेदार है। यह सालन, इसके साथ जो भी आपको पसन्द हो; मगर मियाँ! हाँ! अभी से कहे देता हूँ, मिठाई के लिए पेट में स्थान रखना। घर की बनी हुई है। तुम्हारी चाची के हाथ की। और खीर! बस पूछो मत, उसके लिये भी पेट में गुंजाइश रख ही लेना।"

दोनों ने एक एक पदार्थ खाना प्रारम्भ किया।

"हाँ! तो आप लखनऊ में वकीली करते हैं! हमने भी

वकीली की परीक्षा पास की थी। परन्तु वह उर्दू में थी। अब तो बहुत से वकील बम्बई व कलकत्ता जा कर अंग्रेज़ी में परीक्षा पास करते हैं। आपने अपनी परीक्षा कहाँ पास की है?" खाते खाते तहसीलदार ने पूछा।

"मैंने यह परीक्षा लन्दन में पास की है।" बैरिस्टर ने उत्तर दिया

"ओह, ओ! तब तो आप बैरिस्टर हैं। बहुत पैसा खर्च किया होगा। हमारे यहाँ भी दो चार बैरिस्टर हैं। मगर खर्च के माफ़िक कमाते नहीं। आप की तो बैरिस्टरी अच्छी चल रही होगी?"

"चलती है, गिरते पड़ते चार पाँच सौ महीना कमा लेता हूँ।"

"आप से तो हमारे यहाँ के तहसीलदार अच्छे रहे, जिनकी आमदनी एक हज़ार महीना से कम कभी होती ही नहीं। ईच-बीच कभी कभी साल में दो चार बार चार-चार पाँच-पाँच हज़ार हाथ लग ही जाते हैं।" तहसीलदार ने उत्तर दिया।

"ऐसा क्यों? आपके यहाँ तहसीलदारों का कोई निश्चित वेतन नहीं है?" फिर बैरिस्टर साहब ने पूछा

"अरे मियाँ! क्या कहते हो! वेतन तो भोजन को बस नहीं होता। फिर कपड़े हैं, बच्चों की पढ़ाई है, नौकरों की तनख्वाह है, शादी-ब्याह है, घोड़ा-गाड़ी है, यह सारा खर्च तो ऊपर से निकालना पड़ता है।" उस ज़माने की साफदिली के साथ तहसीलदार ने अपना सारा हाल खोल दिया। "अच्छा,

यह तो कहो हैदराबाद कैसे तशरीफ लाये हो ?"

इस प्रश्न ने बैरिस्टर साहब को थोड़ा-सा चक्कर में डाल दिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे सही बताने में हिचकिचाते थे और झूठ बोलना नहीं चाहते थे। थोड़ी देर विचार करने के बाद उन्होंने कहा—

"कुछ नहीं, नौकरी की तलाश में आया हूँ। यदि कोई नौकरी मिल गई तो यहीं रह जाऊँगा।"

"नौकरी की तलाश में बड़ी दूर आये मियाँ! कोई पहचानत ? किसी की सिफारिश ? कहीं का वसीला ? कुछ लाये हो ?"

"नहीं, मेरी यहाँ न तो किसी से पहचानत है और न किसी की सिफारिश ही लाया हूँ। मुझे किसी का वसीला भी नहीं है।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

"तो फिर बैरिस्टरी के भरें पर चले आ रहे हो ? यदि बैरिस्टरी पर ही नौकरी मिलनी होती तो वहीं लखनऊ में न मिल जाती। यहाँ तक आने की क्या ज़रूरत थी ?" थोड़ी देर ठहर कर पानी का एक गिलास पीने के बाद तहसीलदार ने अपना कथन जारी रखा। "चलो अच्छा ही हुआ, आपकी मेरे साथ मुलाक़ात हो गई। बोलो तहसीलदारी करोगे ?"

"कर लूँगा यदि वेतन पर्याप्त हो। यहाँ तहसीलदार को क्या मिलता है ? हमारी तरफ ढाई सौ रुपये मासिक वेतन है।"

"वेतन ! वेतन ! वेतन ! फिर वही बात। अरे, वेतन में क्या धरा है।" स्वतः की तरफ इशारा करते हुए उन्होंने कहा,

"तहसीलदार को देखो और फिर सोचो तहसीलदार होना है या नहीं। इसके लिये उसका खाना देखो, उसका सामान देखो, जरा विचार करो उस स्याने का जिससे मैं आया था, जरा सोचो उन नौकरों की संख्या को जो मेरे साथ थे, जरा दृष्टिपात करो उस भीड़ पर जो मुझे छोड़ने आई थी, जरा याद करो उस बात को जब मैं तुम्हारे डिब्बे में बावजूद रिज़र्व होने के चढ़ पड़ा, तो न तो गार्ड की, न स्टेशन मास्टर की हिम्मत हुई कि वह तहसीलदार को उतार सके। यह होती है तहसीलदार की शान, यह होता है तहसीलहार का मान। बोलो, तहसीलदारी करोगे?"

"फिर भी मालूम तो हो कि यहाँ तहसीलदार का क्या वेतन है? बैरिस्टर साहब ने पूछा।

"फिर वही एक बात, वेतन! वेतन आपके यहाँ से सौ रुपये कम अर्थात् डेढ़ सौ मासिक मिलता है।"

"डेढ़ सौ रुपये में तो हमारी गुज़र न होगी।" बैरिस्टर साहब गुनगुनाये।

"फिर वही बात। हज़ारों रुपये खर्च किये मगर नासमझ के नासमझ ही रहे। तुम्हारी ही बात नहीं मियाँ, विलायत से पढ़ कर आने वालों की सब की यही दशा होती है। अरे भाई! तहसीलदारी तनख्वाह के लिये नहीं, तोफे के लिए की जाती है। बोलो, करोगे तहसीलदारी।"

"समझो, करेंगे। परन्तु यहाँ पराये मुल्क में हमें तहसील-

दारी कौन देने लगा ?" बैरिस्टर साहब ने मुस्करा कर कहा।

"इसकी चिन्ता तुम मत करो, तुमने हमारे साथ आज भोजन करके हम पर असीम कृपा की है। इसके बदले तुम्हारे लिये नौकरी की चिन्ता हम करेंगे।" तहसीलदार ने बड़े ही सन्तोष, उत्साह और आत्मविश्वास के साथ कहा। ऐसा प्रतीत होता था कि कर्तव्य-बुद्धि से प्रेरित यह व्यक्ति अपने साथी की भलाई का कोई मार्ग सोच रहा है। "हमारे मामा यहाँ के सदरुलमहाम माल (भू-विभाग के मंत्री) हैं। हम तुम्हारे लिये उनसे कह देंगे और काम बन जायगा। सही बात तो यह है कि उन्हें तुम्हारे जैसे योग्य बैरिस्टर तहसीलदारी के लिये कहाँ से मिलने लगे ?"

बातें करते करते दोनों का भोजन समाप्त हो चुका था। दस्तरखान समेटा गया। उसका स्थान पानदान ने ले लिया। उधर चुन्नू ने हुक्का भी सुलगा दिया था। बैरिस्टर साहेब चुरुट पीना चाहते थे। यह देख कर तहसीलदार ने कहा—

"अरे मियाँ, छोड़ो इस मनहूस चुरुट को। न जाने तुम विलायत से वापस आये लोगों को सूखी तम्बाकू में क्या मज़ा आता है।" हुक्के की नली को सामने करते हुए तहसीलदार बोले, "यह लो तुम्हारे यहाँ की लखनवी गुड़ाकू है। एक कश लो, तो हजार चुरुट याद आ जायँ।"

बैरिस्टर साहब ने नली हाथ में ली। दो चार कश लिये। फिर नली तहसीलदार को वापिस दे दी। इस बीच तहसील-

दार ने दो पान के बीड़े लगा लिये थे। एक उन्होंने बैरिस्टर साहब को पेश किया और दूसरा अपने मुख के हवाले किया। फिर डिब्बे की दीवार की तरफ सीट की पीठ से अपनी पीठ जमा कर और पैरों को सीट की पूरी लम्बाई में फैला कर आधे बैठे और आधे लेटे तहसीलदार चार-पाँच मिनट तक हुक्के के गहरे कश लगाते रहे।

× × ×

भोजन करके, पाँच मिनट हुक्का पीने के उपरान्त बेहोशी, उन्माद, उमंग और जीवन, इन सब चेतनाओं का मिश्रण उनके चेहरे पर दिखाई दे रहा था। इन सब चेतनाओं से अभिभूत उन्होंने कहना प्रारम्भ किया।

"अच्छा हुआ, तुमने तहसीलदारी करना स्वीकार कर लिया। नहीं तो तुम्हारे जैसे नई रोशनी के लोग वेतन की कमी के कारण अस्वीकृत कर देते हैं।"

"हमने तो स्वीकार कर लिया है।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

हां, जरूर करना बेटा! तहसीलदारी एक जादू है। चलाना आना चाहिये, फिर सदरुलमहामी (मंत्रिपद) भी इसके सम्मुख झक मारती है।"

"ठीक है, आपके हाथ के नीचे सब जादू सीख लेंगे।" बैरिस्टर साहब ने अर्थ-पूर्ण उद्गार निकाले।

"सच कहते हो, बेटा! सच कहते हो! होशियार हो।

शनैः शनैः सब सीख लोगे। मगर मियां, हमने तो तुम्हारा नाम ही नहीं पूछा, क्या नाम है? कहां ठहरोगे।"

"मेरा नाम इब्राहीमखां है। ठहरूँगा किसी सराय में। आप अपना पता दे दें तो वहीं आ कर मिलूँगा।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया!

"बैरिस्टर इब्राहीमखाँ। ठीक है, याद रहेगा? मुझ गुलाम को नज़ीरअली कहते हैं। मेरा ग़रीबखाना मच्छीगली में है। कोई भी बता देगा।" तहसीलदार ने कहा।

× × ×

हैदराबाद का स्टेशन समीप आ रहा था और गाड़ी का वेग धीमा पड़ रहा था। प्लेटफार्म पर बहुत बड़ी भीड़ देख कर तहसीलदार ने बैरिस्टर साहब से कहा—

"देखा! यहाँ पर भी मेरे स्वागत के लिए कितने लोग जमा हैं।"

तहसीलदार ने खुदा को दुआएँ दीं कि इब्राहीमखाँ के दिल में उसके लिये इज्ज़त बनी रहेगी। गाड़ी स्टेशन पर पहुँच गई। सारा स्टेशन पताकाओं से सजा हुआ था। दूर बैण्ड भी बज रहा था। आश्चर्य की बात यह थी कि भीड़ में तहसीलदार के मामा भू-विभाग के मन्त्री भी थे। वे लपक कर तहसीलदार के समीप आये और पूछा—

"अबे, नजीर! गाड़ी में इब्राहीमखाँ हैं?"

"यही तो हैं।" इशारे से बताते हुए तहसीलदार ने मामा

को उत्तर दिया।

भू-विभाग के मन्त्री ने चाँदी की थाली में से ज़री का एक बड़ा हार ले इब्राहीमखाँ के गले में डाला। "इब्राहीमखाँ ज़िन्दाबाद" के नारों से सारा स्टेशन गूँज उठा। बैण्ड ने "गॉड सेव दि किंग" की धुन प्रारम्भ की। बैरिस्टर साहब एक हाथ में हैट ले कर पुतले की नाईं खड़े हो गये। कुछ देर के लिये चारों तरफ़ शान्ति थी। अवसर पा कर तहसीलदार ने एक परिचित सज्जन से धीमी आवाज़ में पूछा—

"यह क्या माज़रा है?"

"वाह! तुम साथ आ रहे हो और तुम्हें मालूम नहीं कि इब्राहीमखाँ साहब नये मदारुलमहाम (प्रधानमन्त्री) नियुक्त हो कर आये हैं।"

दूसरा कोई होता तो सम्भव है बेहोश हो कर वहीं गिर जाता, मगर तहसीलदार सधा हुआ था। एक लम्बी सांस ले कर वह डिब्बे में वापिस चला गया।

बैण्ड की धुन समाप्त होने पर भू-विभाग के मन्त्री ने जब अपने भांजे को डिब्बे में न पाया तो तलाश किया, पता चला कि प्लेटफार्म के दूसरी तरफ़ रेलवे लाइन की पाँच पंक्तियों को पार करके उनका भांजा अहाते की तार को फलांग रहा है और पुलिस के दो जवान उसे बिला टिकट सैर करने की शंका में पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

—विनायकराव विद्यालंकार

अब तो यह प्रदेश बड़ा उपजाऊ हो गया है। यह उस समय की बात है जब कि पंजाब की नदियों से पानी ले कर इधर नहरें निकाली जा रही थीं, इसलिए कि यह रेतीला प्रदेश उर्वर और हरा-भरा हो जाए। नई नई मंडियाँ खोली जा रही थीं और नए नए शहर बसाए जा रहे थे। इन शहरों के नाम अंग्रेज़ों के नाम पर रखे जा रहे थे। इनमें से एक शहर का नाम रखा गया था लायलपुर। उन दिनों लायलपुर का बड़ा नाम था। इस समय तो लायलपुर एक अच्छा नगर बन गया है परन्तु उन दिनों तो यह अभी आबाद होना प्रारम्भ हुआ था! यहाँ पंजाब में सब से पहले कृषि का एक महाविद्यालय खोला गया था। बहुत-से पंजाबी परिवार जो रोज़गार और अपनी ज़मीनों की तलाश में नए स्थानों की खोज में थे इधर आ कर आबाद हो गये थे। इनमें से एक परिवार श्री दीनानाथ का भी था। इनके एक सम्बन्धी लायलपुर पहले आए थे और उन्होंने ही इनको वहाँ बुला लिया था। दीनानाथ का छोटा-सा परिवार था। परन्तु वे अपने परिवार को अभी यहाँ लाए नहीं थे। इन्होंने लायलपुर पहुँच कर नहर के किनारे लकड़ी का एक छोटा-सा टाल खोल लिया था और इस प्रकार वहाँ अपना कारबार प्रारम्भ कर दिया था।

बहुत-से काम अकेले चल जाते हैं परन्तु दुकान का काम अकेले नहीं चलता। दुकान पर सदा कोई-न-कोई बैठनेवाला चाहिए, फिर सामान लाने का प्रबन्ध करना पड़ता है। सामान लाओ तो दुकान बन्द करनी पड़ती है। दीनानाथ का लड़की का टाल धीरे धीरे चल निकला। नहर के किनारे उनके रहने की झोपड़ी थी-क्योंकि अभी यहाँ बस्ती नई थी-मकान थे ही नहीं। सामने ही लकड़ियों को तोलने का काँटा लगा हुआ था। बाजू में कटी हुई लकड़ियों का ढेर लगा रहता था। सदा एक-दो लकड़ी काटनेवाले काम करते रहते थे। दिन भर ठक ठक चलती रहती थी। काँटे में लकड़ियाँ डलवाने का काम उन्हींसे करवा लेते थे। कारोबार बढ़ने लगा और इसलिए उन्हें एक नौकर रखने की आवश्यकता हुई। उन दिनों विश्व की पहली लड़ाई से कई लोग लौट कर आए हुए बेकार हो गए थे। इन्हीं में से एक पुरबिए को उन्होंने अपने टाल में नौकर रख लिया। लकड़ियों के ढेर के बाईं तरफ़ नहर से ज़रा दूर पर उन्होंने उसके रहने के लिए एक झोपड़ी बनवा दी। एक तो वे अकेले थे और यह प्रदेश अभी तक निर्जन भी था।

(२

इस पुरबिए का क़द ऊँचा था। घुटनों तक की धोती बाँधता था। उसके चेहरे में सबसे आकर्षक थीं उसकी मूछें। जब देखो वे मुड़ी रहती थीं; वह अपनी मूछों के दोनों ओर के किनारों को कभी सीधा न होने देता था। उसके सिर पर तो

इतने बाल नहीं थे कि वह उन पर तेल भी लगाता। हाँ, मूछों को तेल पिलाता था और इनका वह बड़ा शौक़ीन था। मुड़ी हुई मूछों के ताव को देखने के लिए उसकी जेब में एक छोटा-सा दर्पण था। वह जब-तब इस दर्पण को अपनी जेब से निकालता और देख लेता था कि उसकी मूछें ठीक तरह बल खाए हुए अपनी ताव में हैं या नहीं। कभी कभी वह अपनी मुड़ी हुई मूछों को देख कर अकेले में ज़ोर ज़ोर से कहकहे मार कर हँसने लग जाता था। उस समय उसकी यह हँसी देखने ही योग्य होती थी; उसकी आँखों में जो कि बहुत बड़ी नहीं थीं, एक तरह की चमक-सी आ जाती थी और वह चमक आँखों से प्रारम्भ हो कर फिर गालों पर झलक उठती थी। अपनी मूछों को देखते हुए कभी कभी वह 'दर्पण' से बातें करने लग जाता था और कभी कभी जब उससे रहा न जाता था तब गाने लग जाता था। कभी वह पुरबिया प्रेम गीत गाता था, कभी आल्हा गाता था और इसी मस्ती में कभी कभी ढोल भी बजाने लग जाता था। कभी कभी वह रोने लग जाता था।

अपने काम से उसे ज़रा फ़ुरसत मिली कि वह अपनी जेब से इसी दर्पण को निकालता और इसमें अपने मुख को देख देख कर ज़रा सा मुस्करा उठता था। दीनानाथ सोचते थे कि यह पागल है या क्या बात है? किन्तु वह अपना काम बड़ी तत्परता से करता था, इसलिए दीनानाथ को उसे कहने-सुनने का कोई अवसर ही न आया। उनके लिए उसकी ये चेष्टाएँ आकर्षण

का विषय बन गईं थीं।

(३)

एक दिन दुपहर को वह पुरबिया अपनी झोपड़ी में आराम कर रहा था; दुपहर को दूकान में काम कम रहता था। पुरबिए ने जेब से अपने दर्पण को निकाला। 'दर्पण' आधी हथेली के बराबर था; इसके पीछे टीन लगा हुआ था; इस दर्पण की आभा क्षीण हो गई थी; कहीं कहीं उसमें ज़रा ऊपर जंग के धब्बे भी आ गये थे। टीन यहाँ-वहाँ से ढीला हो गया था और टूट गया था। इस दर्पण में एक तरेड़ भी पड़ गई थी। परन्तु वह इस दर्पण को अपनी एक अमूल्य सम्पत्ति समझता था। इस दर्पण को वह सदा अपने साथ रखता था; वह इसका सदा का साथी था; उसे ज़रा फुरसत मिली कि वह इस दर्पण को निकाल लेता और फिर उस दर्पण को देखते हुए वह पहले अपनी मूछों को ताव देता और फिर उन्हें देखते-देखते धीरे-धीरे सब कुछ भूल जाता और कुछ से कुछ हो जाता था। घण्टों बीत जाते थे और वह इसी दर्पण में अपने चेहरे को टक-टकी बाँधे देखता रहता था। न जाने कितने भाव इस दर्पण को देख कर उसके हृदय में आते थे। धीरे-धीरे सायङ्काल हो गया। सूर्यास्त होते ही लाली आकाश में फैल गई। पास में बहती हुई नहर के शान्त, मैले पानी में उस लाली ने झलकने का प्रयत्न किया परन्तु उसके तरंगहीन मैले पानी में वह झलक न सकी। धीरे धीरे यह शान्ति निःस्तब्धता में बदलने लगी। दीनानाथ

पुरबिए को न देख कर ज़रा चिन्तित हो गये। उन्होंने उसे कई बार पुकारा परन्तु उन्हें कोई उत्तर न मिला, उन्होंने समझा कि संभवतः वह कहीं बाहर किसी काम पर चला गया है।

कुछ समय बाद उन्हें कुछ रोने की भी आवाज़ सुनाई दी। वे अपने हुक्के को छोड़ कर उठे और उस पुरबिए की झोपड़ी के सामने जा कर खड़े हो गए। उन्होंने जो दृश्य देखा उससे वे अवाक् रह गए। देखते क्या हैं कि वह पुरबिया उस टूटे हुए दर्पण को अपने हाथों में लिए हुए लगातार टकटकी बाँधे अपने चेहरे को उसमें देख रहा है। कभी मुसकाता है; कभी रोने लग जाता है। उन्होंने सोचा कि बात क्या है, यह कहीं पागल तो नहीं हो गया है। उन्होंने जब तक उसके कन्धे पर हाथ रख कर उसे झकझोर नहीं दिया तब तक उसे यह भी पता न लगा कि कोई उसकी झोपड़ी में आया है। "अरे भाई! इतना अँधेरा हो गया है; तुम इस अँधेरे में इस टूटे हुए दर्पण में क्या अपने चेहरे को देख रहे हो? यह बात क्या है? तुम पागल तो नहीं हो? दीनानाथ ने पूछा। दीनानाथ अधेड़ उम्र के आदमी थे; वे कारबारी मनुष्य थे; वे रसिक पुरुष नहीं थे; कारबारी मनुष्य प्रायः ठूँठ होता है परन्तु आज उसे देख कर उनके हृदय में भी रसिकता उत्पन्न हुई और उसके दिल को टटोलने की इच्छा जागृत हो गई। मनुष्य एक दूसरे को बाह्य रूप और सम्बन्ध में जितना देखता है उतना मनुष्य के रूप में नहीं। जब वह किसी मनुष्य को उसके समस्त बाह्य सम्बन्धों और रूपों

को किनारे रख कर उसको मनुष्य के, एक मात्र मनुष्य के रूप में देखता है तभी वह उसको यथार्थ में पहचानता है, तभी जसे उसकी समस्त अनुभूतियाँ, दुःख-दर्द सब उसके अपने बन जाते हैं।

(४)

"तो बाबू, तुम क्या समझते हो कि मैं इसमें अपने चेहरे को देख रहा हूँ।—नहीं, मैं इस 'दर्पण' में किसी और के चेहरे को देख रहा हूँ।" यह कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगा। दीनानाथ की उत्सुकता जाग उठी, उन्होंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"भाई बताओ तो सही कि आखिर बात क्या है ?

"बाबू, आप इस बात को सुन कर क्या करोगे, रहने दीजिए। चलिए, उठिए। यह किस्सा फिर किसी दिन के लिए रहने दीजिए।" पुरबिए ने कहा। अब रात होती जा रही थी। अन्दर और बाहर दोनों जगह अन्धकार फैल रहा था। दूर आकाश में कहीं कहीं तारे बाहर निकल आये थे। परन्तु उनकी चमक अभी क्षीण-सी ही थी, जो रात के साथ साथ बढ़ती जा रही थी।

दीनानाथ भी सब कुछ भूल गए। उन्होंने आग्रह किया कि वे तब तक वहाँ से न उठेंगे जब तक कि उन्हें वह अपना समस्त वृत्तान्त नहीं सुनाएगा।

पुरबिए ने उठ कर पहले लैम्प जला दिया और फिर भारी आवाज़ में कहना प्रारम्भ किया—"बाबू, बाबू, हम छोटे आदमी

हैं; हमारा छोटा-सा किस्सा है और यह किस्सा हम अपने जीवन के समान अपने ही पास रखना चाहते हैं। परन्तु अब आपकी बहुत इच्छा है इसलिए सुनाने के लिए मजबूर हैं।"

"जब पिछली लड़ाई हुई थी हमारे गाँव में भी फ़ौज के लिए भरती हुई थी। भरती करने के भी क्या क्या नए नए ढंग थे। तरह तरह के लालच दिए जाते थे और जब इन सब लालचों का भी गाँव वालों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था तो ज़ोर-जबर से भरती की जाती थी। बाबू साहब बड़े आदमी से बढ़ कर खुद गर्ज और कोई नहीं होता। जब इसकी जान पर आ बनती है तब वह सैकड़ों और हज़ारों जानों की भी परवाह नहीं करता। वह अपने मरने से पहले हज़ारों को मार और मरवा कर मरता है। पता नहीं मेरा नाम किसने लिखवा दिया था। गाँव में मेरी थोड़ी बहुत ज़मीन थी; मैं अपनी खेती में खुश था, और हुआ था मेरा अभी अभी गौना। बताइए, बाबू साहब, ऐसी हालत में कौन लड़ाई पर जाने के लिए तैयार होता। परन्तु मुझे पकड़ कर ज़बर्दस्ती बुलवाया गया; मुझसे अंगूठा लगवा लिया गया और अब मुझे धमकी दी गई कि यदि तुम भरती नहीं होगे तो तुम्हारी ज़मीन खेती सब ज़ब्त कर ली जाएगी। अन्त में विवश हो कर मुझे भरती होना पड़ा।

जिस दिन मुझे विदा होना था—हाँ बाबू साहब जिस दिन मुझे विदा होना था, मेरी पत्नी ने मुझे अपने हाथ से खाना खिलाया और कहा कि अब तक तुम अपने हाथों से अपनी मूछों

पर ताव देते रहे हो आज हम तुम्हारी मूछों का शृंगार करेंगी। तुम हमें भूल तो नहीं जाओगे ? मूछें मोड़ कर उसने यह दर्पण मेरे हाथ में रख दिया और हँसती हुई बोली—देखो तुम्हारी मूँछ आज कैसी बल खा रही हैं ? यह 'दर्पण' अपने पास रखना और हमें कभी कभी याद कर लेना। देखो तुम्हारी यह जुदाई का समय आसानी से कट जाएगा और जब कभी तुम्हें हमारी याद आए इस दर्पण को देख लेना।

और सचमुच बाबू साहब यह जुदाई का समय इसी तरह बीत गया। अपनी लड़ाई का हाल क्या सुनाऊँ ? लड़ाई समाप्त हो गई थी। मैं वापस आया; आप समझ सकते हैं उस समय मेरे हृदय में क्या क्या उमंगें होंगी। मैंने तभी से इन मूछों में विशेष दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ कर दी थी। मैंने सोचा था कि मैं जब उसे अपनी बल खाती हुई मूछें दिखलाऊँगा तो वह प्रसन्न हो जाएगी। जब लौट कर अपने गाँव में पहुँचा तब मालूम हुआ कि अभी दो साल हुए यहाँ महामारी फैल गई थी और वह बिचारी उसी में चल बसी ! यह कहते कहते वह फिर रोने लग गया। "मेरी सब आशाओं पर पानी फिर गया। मुझे अपने जीवन में कोई दिलचस्पी न रही। वह गाँव जिसके मैं प्रतिदिन स्वप्न देखता था और जिसके लिए मैं लड़ाई से इतने लम्बे अरसे के बाद तरसता हुआ आया था अब मुझे काटने को दौड़ने लगा। मैं अपने गाँव को छोड़ कर चला आया और इसी तरह फिरता फिरता आपके पास लायलपुर आ पहुँचा।"

बाबू, आप समझते होंगे मैं इस दर्पण में अपनी आकृति को देखता हूँ। नहीं —आप विश्वास नहीं करेंगे परन्तु मैं इस दर्पण में अपनी पत्नी को देखता हूँ और मैं दर्पण में उसको देख कर इन मूछों को उसी को दिखाया करता हूँ। कभी कभी मुझे ऐसा अनुभव होता है कि वह मेरी मूछों को देख कर मुसकरा रही है और तब मैं हँसने लग जाता हूँ। आप समझते होंगे मुझे मूछें रखने का शौक है। मेरा शौक-वौक तो सब चला गया। अपनी पत्नी की स्मृति मेरे हृदय पर कुछ ऐसी बैठी हुई है कि वह मुझसे एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होती। उसने लड़ाई पर जाते समय मुझे यह 'दर्पण' दिया था और इन मूछों का अपने हाथों सिंगार किया था। अब ये दोनों वस्तुएँ ही मेरे जीवन की सम्पत्ति बन गई हैं। कभी कभी इस दर्पण को देखते-देखते मुझे ऐसा अनुभव होता है कि जैसे वह मुझे देख रही है और मैं उसे देख रहा हूँ और तब घण्टों मैं इस दर्पण को अपने हाथों में लिए बैठा रहता हूँ। कितना समय व्यतीत हो जाता है मुझे इसका ज्ञान ही नहीं रहता। उस समय मुझे कुछ सूझता नहीं। मैं खो-सा जाता हूँ। दीनानाथ की आँखों में आँसू छलछला आए। उन्हें अनुभव हुआ सच्चा प्रेम पागलपने का ही दूसरा नाम है।

वंशीधर विद्यालंकार

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

श्री वाजपेयी आजकल कानपुर में रह कर हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। हिन्दी के कहानी लेखकों में आपका विशेष स्थान है। सरल भाषा में ऊँचे से ऊँचा भाव व्यक्त करना आपकी विशेषता है। गृहस्थ जीवन की अनेक घटनाओं को आपने कहानी का रूप दिया है।

इस संकलन में आपकी 'प्रायश्चित्त' नामक कहानी प्रकाशित हुई है। कहानी में इस बात को प्रदर्शित किया गया है कि एक व्यक्ति की विपत्ति से दूसरा आदमी किस तरह लाभ उठाता है। बहू के हाथ से बिल्ली मर गई, यह जान कर रामू की माँ बहुत चिन्तित थी। परममुख इस स्थिति से लाभ उठाना चाहता था। पढ़ते समय हमें परमसुख पर गुस्सा आता है कि वह इतना लालची क्यों है, किन्तु हमारा यह क्रोध उस समय हँसी में बदल जाता है; जब नौकरानी आ कर समाचार देती है कि बिल्ली उठ कर भाग गई। बिल्ली मरी नहीं थी, चुपचाप पड़ी हुई थी।

श्यामू सन्यासी

हिन्दी के प्रगतिशील लेखक, इन्दौर में रहते हैं। आप छोटी कहानियों के लिखने में बड़े कुशल हैं।

इस संग्रह की 'किरणें' नामक कहानी आप ही की लिखी है। कहानी में एक गरीब घर का वर्णन है। कहानी एक लड़के के मुँह से कहलाई गई है। माँ बीमार है और पानी बरस रहा है। बड़ी भयानक वर्षा है।

इस भयानक समय में माँ का देहान्त हो जाता है।

स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद'

स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' काशी के निवासी थे। आपके कारण हिन्दी साहित्य को बहुत गौरव प्राप्त हुआ। आप जीवन भर हिन्दी की सेवा करते रहे। आप उच्च कोटि के कहानी लेखक, उपन्यासकार, नाटक-लेखक और कवि थे।

'मधुआ' कहानी में एक ऐसे शराबी का चित्रण है जो शराब के बिना एक क्षण भी नहीं रहता था। शराब के आगे उसे अपने तन-मन की सुध भी नहीं रहती थी। किन्तु उसी शराबी पर एक लड़के के पालन पोषण का भार पड़ता है तो उसकी वह बुरी लत बदल जाती है। वह मेहनत करके अपना और उस लड़के का भरण पोषण करने लगता है।

स्वर्गीय प्रेमचन्द

हिन्दी के श्रेष्ठतम कहानी लेखक और उपन्यासकार। काशी निवासी। आपने भारत के ग्रामीण जीवन का अपनी रचनाओं में सजीव वर्णन किया है। आपकी रचनाओं में जैसे हमारे देश की आत्मा बोलती है।

'ईदगाह' कहानी में बालकों के मनोभावों का जिस तरह चित्रण हुआ है वैसा शायद ही किसी दूसरी कहानी में मिले। हामिद एक गरीब बुढ़िया का पौत्र है, न माँ, न बाप! फिर भी वह कितना चतुर और समझदार है। कहानी पढ़ते पढ़ते कुछ स्थानों पर आँसू आ जाते हैं, सब लड़के खिलौने खरीदते हैं, मिठाई खाते हैं, किन्तु वह अपनी दादी के लिए चिमटा लाता है, जिससे उसके हाथ न जलें।

श्री चतुरसेन शास्त्री

शास्त्रीजी दिल्ली के रहनेवाले हैं और लगभग तीस वर्ष से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त आपने नाटक तथा

बहुत-से विचारपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे हैं।

'खूनी, कहानी में शास्त्रीजी ने एक क्रान्तिकारी की जीवनी चित्रित की है। कितनी कठोरता और अनुशासनप्रियता थी क्रान्तिकारियों में। कहानी कहनेवाला क्रान्तिकारी है। उसकी एक लड़के से गाढ़ी मित्रता हो जाती है। दल के सरदार को उस लड़के पर सन्देह हो जाता है और वह लड़के को मारने का आदेश देता है। कहानी कहनेवाला युवक अपने मित्र को मार कर सरदार की आज्ञा का पालन करता है किन्तु उसी दिन से वह उस दल को छोड़ देता है।

श्री सुदर्शन

श्री सुदर्शन उर्दू तथा हिन्दी दोनों के लेखक हैं। आपके अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल आप बम्बई में रहते हैं और सिनेमाओं के लिए गीत तथा संवाद लिखते हैं।

'साइकिल की सवारी' में एक आपबीती घटना है। कहानी इस तरह लिखी गई है जैसे लेखक स्वयं अपनी बात लिख रहा है। कहानी कहनेवाला साइकिल पर चढ़ने के लिए लालायित रहता है किन्तु उसकी इच्छा कभी पूरी नहीं होती।

श्रीराम शर्मा

निवास-स्थान हैदराबाद। कहानी-लेखक और पत्रकार :

'भूखा रोज़ेदार' कहानी में बंगाल के उस अकाल का वर्णन है जिसके कारण लगभग पचास लाख नर-नारी काल के गाल में समा गए। मेहर भी उन्हीं में से एक था। मेहर भूखों मर रहा था किन्तु उसकी मानवता मर नहीं चुकी थी। वह उस अवस्था में भी रोज़ा रखता है।

श्री विनायकराव विद्यालंकार

'हैदराबाद के हिन्दी पत्रकार' यशस्वी वकील तथा जननायक। आप इस समय कहानी लिखने के नये प्रयोग कर रहे हैं। कहानी में कल्पना के स्थान पर वास्तविकता अधिक रहती है। रावजी का व्यंग तो उनकी कहानी लिखने की शैली में विशेषता उत्पन्न कर देता है।

'तहसीलदार' कहानी में पात्रों के नाम चाहे काल्पनिक हों किन्तु घटना बिलकुल सत्य है। उस में आज से तीस वर्ष पहले के हैदराबादी-जीवन को ज्यों का त्यों चित्रित किया गया है। एक युवक जो हैदराबाद के प्रधान मन्त्री पद पर नियुक्त हो कर आ रहा था रास्ते में एक तहसीलदार से मिलता है। तहसीलदार का ठाठ-बाट और रौब-दाब देखने लायक है।

श्री वंशीधर विद्यालंकार

हैदराबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। कविता के क्षेत्र में आप एक नई शैली ले कर अवतीर्ण हुए हैं।

इन दिनों कविता के अतिरिक्त कहानी के क्षेत्र में भी आप योप्रग कर रहे हैं। इस संग्रह में आपकी 'दर्पण कहानी प्रकाशित हो रही है जो संभवतः आपकी पहली कहानी है।

'दर्पण' में एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया गया है जिसे अपनी पत्नी तथा अपनी मूछों पर बहुत गहरा प्रेम था। जब वह लड़ाई पर जा रहा था तो उसकी पत्नी अपने हाथ से उसकी मूछें सँवारती है और उसे एक आइना देती है। पत्नी जीवित नहीं रहती किन्तु वह व्यक्ति उस आइने में उसके मुख की कल्पना कर के प्रसन्नता पाता है। यहाँ तक कि उसकी दशा पागलों की सी हो जाती है। कभी घण्टों हँसता है, कभी घण्टों रोता है।